
SRI PRATAP COLLEGE
LIBRARY.

मेहरचन्द लक्ष्मणदास हिंदी पुष्पमाला—१३

मकरंद

अर्थात्

चरित्र-गठन-संबंधी

कविताओं का अपूर्व संग्रह

(विद्यार्थी संस्करण)

संपादक

श्रीयुत बलदेव शास्त्री न्यायतीर्थ

प्रकाशक

मेहरचंद लक्ष्मणदास

संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

द्वितीयावृत्ति

अजिल्द ।।।=)] मार्च १९३९ [सजिल्द १-)

प्रकाशक—
लाला तुलसीराम जैन, मैनेजिंग प्रोप्राइटर, मेहरचंद्र लक्ष्मणदास, संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

(पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा प्रभाकर परीक्षा में नियत)

मुद्रक—
लाला ख़ज़ानचीराम जैन, मैनेजर, मनोहर इलेक्ट्रिक प्रेस, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

दो शब्द

भारतीय विद्यार्थियों के चरित्र-गठन के लिए सुंदर एवं उपदेशमयी कथा-कहानियों के समान अनेक काव्य-संग्रहों का निर्माण भी होने लगा है। कुछ काव्य-संग्रह तो केवल प्राचीन कवियों की वाग्विभूति के ही क्रीड़ा-स्थल हैं, और कुछ नवीन कवियों की कविताओं के ही एकमात्र नृत्य-गृह हैं।

भारतीय विद्यार्थियों को आज कल किस प्रकार की कविताओं का आस्वादन करना श्रेयस्कर है—यह बताने की आवश्यकता नहीं। भारत को आज शृंगारमय, विरह-अनुभूतिमय, कुरुचिपूर्ण एवं सिद्धांतहीन पद्याभासों की आवश्यकता नहीं; वह तो उसकी नस नस में फड़कन उत्पन्न करने वाली और उसके धार्मिक भावों की रक्षा के साथ साथ कर्तव्य-पथ की ओर इंगित करने वाली सुरुचिपूर्ण सुंदर कविताओं की ओर उत्सुक नयनों से देख रहा है।

हर्ष की बात है कि श्री बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पंडित रामनरेश त्रिपाठी और श्री पंडित माखनलाल चतुर्वेदी आदि सुकवियों ने इस ओर कदम बढ़ाया, और हिंदी भारत की सुप्त आत्मा को अपनी मनोरम कविता की सार्थक कूक से जगाया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि—श्री पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तक 'सुकवि-कौमुदी' में प्राचीन और अर्वाचीन सुकवियों की सुंदर रचनाओं का संकलन कर एक प्रशंसनीय कार्य किया है।

अब तो हिंदी में इस प्रकार के नहीं तो इससे मिलते-जुलते अनेक संग्रह निकल रहे हैं, किंतु उनमें प्रायः विद्यार्थियों की नवनवोन्मेषिणी सामयिक उत्सुकता और आवश्यकता को तिलांजलि दे दी जाती है।

'मकरंद' इस आवश्यकता को कहाँ तक पूर्ण करेगा—यह तो समय ही बतलाएगा, किंतु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि हमने इसमें यथाशक्ति वे ही कविताएँ संगृहीत की हैं, जो विद्यार्थियों के चरित्र-गठन में अनन्य सहायक हो सकें।

अंत में हम इतना और निवेदन करना आवश्यक समझते हैं कि—इस पुस्तक में हमारा नाम और कविता श्री लाला खजांचीराम जी और मित्रवर पंडित विजयानंद जी खंडूड़ी शास्त्री के बार बार कहने पर आ सकी है। मना करने पर भी परिचय के दो अक्षर उन्होंने लिख ही डाले। साथ ही पद्यों के छाँटने में भी श्री पंडित विजयानंद जी खंडूड़ी शास्त्री ने मुझे जो सहायता दी है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

लाहौर
२५ अगस्त १९३७

—बलदेव

मकरंद-सूची

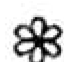
मकरंद

अमीर ख़ुसरो

परिचय

अमीर खुसरो का जन्म संवत् १३१२ और मृत्युकाल संवत १३८२ है। इनकी कब्र दिल्ली में अभी तक है; उस पर मेला भी लगा करता है।

अब तक हिंदी में जो प्राचीन कविता मिली है, अमीर खुसरो का उसमें सर्व-प्रथम स्थान है। खड़ी बोली के आदिकवि होने का श्रेय इन्हीं को है। वास्तव में ये फारसी के महान कवि और प्रसिद्ध लेखक थे। किंतु इन्होंने अपने समय की प्रचलित हिंदी में भी दोहे, पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सखुने, गीत, ढकोसले आदि फुटकल छंद लिखे हैं। उनका अभी तक उत्तर भारत में प्रचार है। खुसरो ने जिस हिंदी में अपनी छंद-रचना की है, वह अवश्य ही उस समय बोलचाल की भाषा रही होगी। किंतु आजकल तत्कालीन अन्य कविताएँ नहीं मिलतीं।

पहेलियाँ

पौन चलत वह देह बढ़ावे । जल पीवत वह जीव गँवावे ।
है वह प्यारी सुन्दर नार । नार नहीं पर है वह नार ॥१॥

आग

बीसों का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ॥२॥

नाखून

एक राजा की अनोखी रानी । नीचे से वह पीवे पानी ॥३॥

दिया की बत्ती

खेत में उपजे सब कोई खाय । घर में होवे घर खा जाय ॥४॥

फूट

जब काटो तब ही बढ़े। बिन काटे कुम्हिलाय।
ऐसी अद्भुत नार का। अंत न पायो जाय ॥५॥

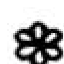
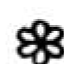
दीप-शिखा

एक कहानी मैं कहूँ। सुन ले मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया। बाँध गले में सूत ॥६॥

पतंग

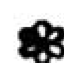
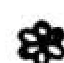
सर पर जाली पेट से खाली। पसली देख एक एक निराली ॥७॥

मोढ़ा

दो सखुना हिंदी

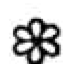
रोटी जली क्यों? घोड़ा अड़ा क्यों? पान सड़ा क्यों? फेरा न था।
अनार क्यों न चक्खा? वज़ीर क्यों न रक्खा? दाना न था।
गोश्त क्यों न खाया? डोम क्यों न गाया? गला न था।
ढोलकी क्यों न बजी? दही क्यों न जमी? मँढी न थी।
सितार क्यों न बजा? औरत क्यों न नहाई? परदा न था।
घर क्यों अँधियारा? फकीर क्यों बिगड़ा? दिया न था।

कबीर

परिचय

कबीर का जन्म संवत् १४५६ और मृत्यु-काल संवत् १५७५ माना जाता है। ये प्रसिद्ध महात्मा और सुधारक हुए हैं। हिंदी संतकवियों में इनका स्थान सर्वोपरि है। किंवदंती है कि इनका जन्म काशी में किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। उसने इनको लहरतारा के ताल के किनारे फेंक दिया था। संयोगवश नीरू नाम का एक जुलाहा इन्हें अपने घर उठा लाया और उसने इनका भली भाँति पालन-पोषण किया। जब ये बड़े हुए, तो इन्होंने स्वामी रामानंद की शिष्यता ग्रहण की। स्वामी रामानंद अपने समय के प्रसिद्ध सुधारक थे। उनका असर कबीर पर भी पड़ा। कबीरदास पढ़े-लिखे न थे, किंतु विवाद में ये अच्छे-अच्छे पंडितों को हरा देते थे। ये जाति-भेद बिलकुल नहीं मानते थे। इनका चलाया हुआ मत कबीर-पंथ नाम से प्रसिद्ध है। हिंदू और मुसलमान दोनों ही इनके शिष्य पाये जाते हैं।

साखी

दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे होय ॥१॥

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिस फिरै यह तो सुमिरन नाहिं ॥२॥

झूठे सुख को सुख कहैं मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद ॥३॥

रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥४॥

आछे दिन पाछे गए गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥५॥

काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी बहुरि करैगा कब्ब ॥६॥

माटी कहै कुम्हार को तू क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा मैं रूँदूँगी तोहिं ॥७॥

आये हैं सो जायँगे राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले एक बँधे जंजीर ॥८॥

या दुनिया में आय के छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले उठी जात है पैंठ ॥९॥

साँई इतना दीजिये जा में कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ॥१०॥

क्या मुख लै विनती करौं लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं कैसे भावौं तोहिं ॥११॥

सिंहों के लेहँड़े नहीं हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ साधु न चलैं जमात ॥१२॥

साधु कहावन कठिन है ज्यों खाँड़े की धार।
डगमगाय तो गिरि परे निःचल उतरै पार ॥१३॥

जाति न पूछो साधु की पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान॥१४॥

कबीर संगत साधु की हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की आठों पहर उपाधि॥१५॥

कबीर संगत साधु की ज्यों गंधी की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी वास सुवास॥१६॥

सहज मिलै सो दूध-सम माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त-सम जामें ऐंचातानि॥१७॥

अगिन आँच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस महा कठिन व्यौहार॥१८॥

दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से लोह भस्म हो जाय॥१९॥

ऐसी वानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय॥२०॥

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा रहा किनारे बैठ॥२१॥

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप॥२२॥

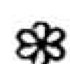
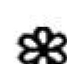
साँचे स्राप न लागई साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै साँचे माहिं समाय ॥२३॥

जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटैं चारों दीरघ रोग ॥२४॥

रूखा सूखा खाइ कै ठंडा पानी पीव।
देखि विरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव ॥२५॥

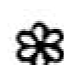
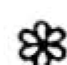
आव गई आदर गया नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गये जबहिं कहा कछु देह ॥२६॥

केसन कहा बिगारिया जो मूँड़ो सौ वार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये जामें विषै विकार ॥२७॥

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं,
देखि भागै सो सूर नाहीं।
काम और क्रोध मद लोभ से जूझना,
मँडा घमसान तहँ खेत माहीं ॥
सील और साँच संतोष साही भये,
नाम समसेर तहँ खूब बाजै।

कहै कबीर कोई जूझिहैं सूरमा,
कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै ॥

करम गति टारे नाहिं टरी ॥

मुनि बसिस्ट से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दशरथ को बन में बिपति परी ॥

कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी ।
सीता को हरि ले गयो रावन सोने की लंक जरी ॥

नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोनि परी ॥

पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर बिपति परी ।
दुरजोधन को गर्व घटायो जदुकुल नास करी ॥

राहु केतु औ भानु चन्द्रमा विधि संजोग परी ।
कहत कबीर सुनो भइ साधो होनी हो के रही ॥

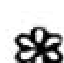
  

जायसी

परिचय

जायसी का असली नाम मुहम्मद था, मलिक उपाधि थी। जायस (ज़िला रायबरेली) में रहने के कारण इनका नाम जायसी पड़ा। ये सूफ़ी मत के थे। इनके जन्म-मृत्यु-काल के विषय में कोई निश्चित मत नहीं है। किंतु इतना सिद्ध है कि इन्होंने अपने काव्य पद्मावत की रचना संवत् १५६७ में की थी। इनकी कविता की बोली अवधी है। बाल्य-काल में ही शीतला-रोग से ग्रस्त हो जाने के कारण इनकी एक आँख जाती रही, और ये अत्यंत कुरूप हो गए। धार्मिक विद्वेष तो इन्हें छू तक नहीं गया था। पद्मावत के रूप में प्रसिद्ध हिंदू महारानी पद्मावती का चरित्र-चित्रण इसका स्पष्ट प्रमाण है।

इनकी समाधि अमेठी राज (ज़िला सुलतानपुर) में राजमहल के उत्तर में अभी तक विद्यमान है।

युद्ध-वर्णन

इहाँ राज अस सेन बनाई। उहाँ साह कै भई अवाई ॥
अगिले-दौरे आगे आये। पछिले पाछ कोस दस छाए ॥
साह आइ चितउर गढ़ बाजा। हस्ती सहस-बीस सँग साजा ॥
ओनइ आए दूनौ-दल साजे। हिंदू तुरक दुवौ रन गाजे ॥
दुवौ समुद्र-दधि उदधि अपारा। दूनौ मेरु खिखिंद पहारा ॥
कोपि जुझार दुवौ दिसि मेले। औ हस्ती हस्ती सहुँ पेले ॥
आँकुस चमकि बीजु अस बाजहिं। गरजहिं हसति मेघ जनु गाजहिं

धरती सरग-एक भा, जूहहि ऊपर जूह।
कोई टारे ना टरै, दूना-बज्र-समूह ॥१॥

हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहिं। जनु परवत परवतसौं बाजहिं॥
गरू गयंद न टारे टरहीं। टूटहिं दाँत माथ गिरि परहीं॥
परवत आइजो परहिं तराहीं। दर-महँ चापि खेइ मिलि जाहीं॥
कोइ हस्ती असवारहि लेहीं। सूँड समेटि पायँ तर देहीं॥
कोइ असवार सिंघ-होइ मारहिं। हनि कै मस्तक सूँड उपारहिं॥
गरब गयन्दह गगन पसीजा। रुहिर चुवै धरती सब भीजा॥
कोइ मैमत सँभारहि नाहीं। तब जानहि जब गुद सिर जाहीं॥

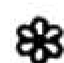
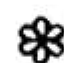
गगन रुहिर जस बरसै, धरती बहै मिलाइ।
सिर धर टूटि बिलाहिं तस, पानी पंक बिलाइ॥२॥

आठौबज्र जूझ जस सुना। तेहि तें अधिक भएउ चौगुना॥
बाजहिं खड़ग उठै दर आगी। भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी॥
चमकहि बीजु होइ उजियारा। जेहि सिर परे होइ दुइ फारा॥
मेघ जो हस्ति हस्तिसहुँ गाजहिं। बीजु जो खड़ग खड़ग सौं बाजहिं
बरसहिं सेल बान होइ कादौ। जस बरसै सावन औ भादौं॥
झपटहि कोपि परहिं तरवारी। औ गोला ओला जस भारी॥
जूझे बीर कहौं कहँ-ताई। लेइ अछरी कैलास सिधाई॥

स्वामि काज जो जूझे, सोइ गए-मुख-रात।
जो भागे सत छाँडि कै, मसि मुख चढ़ी परात॥३॥

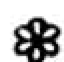
भा संग्राम न भा अस काउ। लोहे दुहुँ दिसि भए अगाउ॥
सीस कंध कटि कटि भुइँ परे। रुहिर सलिल होइ सायर भरे॥

अनँद बधाव करहिं मस-खावा। अब भख जनम जनम कहँ पावा॥
चौंसठ जोगिनि खप्पर पूरा। विग जंबुक घर बाजहिं तूरा॥
गिद्ध चील सब माँडो छावहिं। काग कलोल करहिं औ गावहिं॥
आजु साह हठि अनि वियाही। पाई-भुगुति जैसि चितचाही॥
जेइ जस माँसू भखा परावा। तस तेहि कर लेइ औरन्ह खावा॥
काहू साथ न तन-गा, सकति मुए सब पोखि।
ओछ पूर तेहि जानब, जो थिर आवत जोखि॥१४॥

वर्षा-वर्णन

ताल तलाव सो बरनि न जाहीं। सूझै वार पार तिन्ह नाहीं॥
फूले कँवल कुमुद उजियारे। जानो उये गगन महँ तारे॥
उतरहिं मेघ चढ़हिं लै पानी। चमकहिं मच्छ बीजु की बानी॥
पैरहिं पंखि सो संहि संगा। सेत पियर राते बहुरंगा॥
चकई चकवा केलि कराहीं। निसि के बिछुरे दिनहिं मिलाहीं
कुरलैं सारस भरे हुलासा। जीवन मरन सु एकहि पासा॥
बोलहिं सोनढेंक बक लेदी। रहे अबोल मीन जलभेदी॥
नग अमोल तहँ ऊपजैं, दिनहिं बरैं जस दीप।
जो मरजीया होय तहँ, सो पावै वे सीप॥

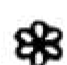
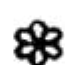
सूरदास

परिचय

सूरदास का जन्म संवत् १५४० और मृत्यु-काल संवत् १६२० माना गया है। कुछ लोग इन्हें सारस्वत ब्राह्मण और कुछ चंदवरदाई का वंशज और ब्रह्मभट्ट मानते हैं।

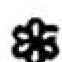
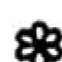
एक दिन की बात है कि सूरदास किसी कारण विरक्त हो, घर छोड़कर, वृंदावन की ओर चल पड़े। मार्ग में ये किसी धनी के यहाँ ठहरे। उस धनी की स्त्री जब स्वागत के लिए आई, तो इन्होंने अपनी आँखों को दोषी ठहरा उसी देवी से तकुआ मँगवाकर अपनी दोनों आँखें फोड़ लीं। इस प्रकार अंधे सूरदास ने हरिगुण-गान करते हुए वृंदावन को प्रयाण किया।

इनके पदों का संग्रह 'सूर-सागर' नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं—इन्होंने सवा लाख पद बनाए थे, जिनमें से अब केवल पाँच-छः हज़ार के लगभग ही मिलते हैं। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभाचार्य ने व्रजभाषा के सुप्रसिद्ध आठ कवियों को मिलाकर 'अष्टछाप' स्थापित किया था। सूरदास उनमें सर्व-श्रेष्ठ थे। सूरदास की जोड़ी का बाल-चरित्र-चित्रण तो अन्यत्र मिल ही नहीं सकता। तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम के चरित्र-चित्रण में जो कौशल दिखाया है, ठीक वैसा ही सूरदास ने श्रीकृष्ण के चरित्र-चित्रण में दिखाया है। इनका पद-माधुर्य तो अनुपम है।

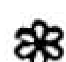
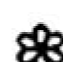
  

पद

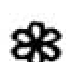
मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर पावै ॥
कमलनयन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै ।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये॥
चारु कपोल लोल लोचन छवि गौरोचन को तिलक दिये।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये॥
कठुला कंठ वज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये॥

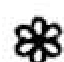
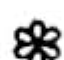
  

मैया, कबहिं बढ़ेगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हावत ओछुत नागिन सी भ्वैं लोटी॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी॥

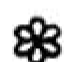
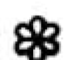
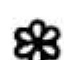
खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिझत बल भैया॥

मोसों कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि जतन बटैया॥
अब बाबा कहि कहत नंद को जसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चलो खिसैया॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया।
'सूर' नंद बलरामहि धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया॥

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।

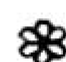
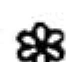
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो॥
चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो।
मैं बालक बँहियन को छोटो छीको किहि विध पायो॥
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो॥
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा लै उर कंठ लगायो॥

मैया, मैं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाइँ पिराइ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कूँ आवै मन बहराइ।
'सूर' श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ॥

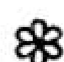
  

आज मैं गाय चरावन जैहौं।
वृंदावन के भाँति-भाँति फल अपने कर तैं खैहौं॥
ऐसी अबहिं कहौ जनि बारे देखौ अपनी भाँति।
तनिक तनिक पग चलिहौ कैसे आवत ह्वै है राति॥
प्रात जात गैयाँ लै चारन घर आवत है साँझ।
तुमरो कमल-बदन कुम्हिलैहै रेंगत घामहिं माँझ॥
तेरी सौं मोहि घाम न लागत भूख नहीं कछु नेक।
'सूरदास' प्रभु कह्यो न मानत परे आपनी टेक॥

कान्ह कहा चाहत से डोलत।

बूझेहु ते वदन दुरावत सूधे वोल न वोलत॥
सूने निपट अँध्यारे मंदिर दधि भाजन में हाथ।
अव कहि कहा वनै हौ उतर कोऊ नाहिं न साथ॥
मैं जान्यो यह घर अपनो है या धोखे में आयो।
देखतु हौं गौरस में चीटी काढ़न को कर नायो॥
सुनि मृदु वचन निरखि मुख शोभा ग्वालिनि मुरि मुसुकानी।
'सूर' श्याम तुम हो अति नागर वात तिहारी जानी॥

मीराबाई

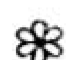
परिचय

वाई जी का जन्म संवत् १५५५ के आस-पास और स्वर्गवास संवत् १६०३ में द्वारकापुरी में चोकड़ी नाम के ग्राम में हुआ था। इनका विवाह उदयपुर के महाराज कुमार भोजराज के साथ हुआ था।

कहते हैं कि—विवाह हो जाने पर मीराबाई चित्तौड़ चली गईं। लगभग दस वर्ष बीतने पर यह विधवा हो गईं। पर इन्हें पति की मृत्यु का दुःख तनिक भी नहीं हुआ; क्योंकि इनके हृदय में गिरधर गोपाल के प्रति अनन्यभक्ति का अंकुर फूट चुका था। ये रात-दिन उन्हीं के प्रेम में लीन रहतीं और साधु संतों की संगति में आने-जाने लगीं। मीरा के देवर विक्रमादित्यसिंह ने इनके मन को घर-गृहस्थी की ओर फेरने के लिए भरसक यत्न किया, किंतु वे असफल रहे। अंत में मीराबाई ने घरवालों से तंग आकर तुलसीदास को एक पद्यात्मक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने पूछा कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिए। तुलसीदास ने उत्तर दिया—

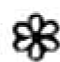
जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी-सम यद्यपि परम सनेही॥
······इत्यादि।

वस, फिर क्या था; ये घर-बार छोड़ वृंदावन में निवास करने लगीं। इन्होंने अनेक काव्य-ग्रंथ लिखे हैं। इनकी भाषा व्रज-भाषा है; किंतु राजस्थानी की पुट लगी रहती है। इनकी कविता उपदेश-पूर्ण, सरस एवं भक्ति-भावों से भरी हुई है।

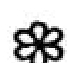
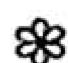
  

पद

राम नाम रस पीजै मनुआँ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठि नित हरि चर्चा सुण लीजै॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित से वहाय दीजै।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर ताहिके रँग में भीजै॥

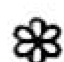
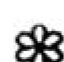
बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर-सुधा रस मुरली राजित उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटितल सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल॥

भजु मन चरण कमल अविनासी।
जेतइ दीसे धरनि गगन बिच तेतइ सब उठ जासी॥
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हें कहा लिए करवट कासी॥
इहि देही का गरव न करना माटी में मिलि जासी।
यों संसार चहर की बाजी, सांझ पड्या उठ जासी॥
कहा भयो है भगवा पहिन्याँ घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहीं जानी उलट जनम फिर आसी॥
अरज करौं अबला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फाँसी॥

होरी खेलत हैं गिरिधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारी सँग जुवती ब्रजनारी॥
चंदन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरि-भरि मूठ गुलाल लाल चहुँ देत सबन पै डारी॥
छैल छबीले नवल कान्ह सँग स्यामा प्रान-पियारी।
गावत चारु धमार राग तहँ दै दै कल करतारी॥
फाग जु खेलत रसिक साँवरो बाढ़यौ रस ब्रज भारी।
'मीरा' प्रभु गिरिधर मिले मनमोहन लाल बिहारी॥

तुलसीदास

परिचय

तुलसीदास जी का जन्म संवत् १५८९ और मृत्यु-काल संवत् १६८० है। ये राजापुर (ज़िला बाँदा) में एक ग़रीब सरयूपारीण दुबे ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुए थे। पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। ये साधु-संतों की संगति में अधिक रहा करते थे। पीछे नरहरिदास ने इन्हें अपने पास रख लिया, और ये पंचगंगा घाट पर उनसे रामायण की कथा सुना करते थे। कुछ काल बाद काशी में वेद-शास्त्रों का अध्ययन करके ये अपने घर राजापुर लौट आए और दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से इनका विवाह हो गया।

तुलसीदास अपनी स्त्री पर अत्यंत अनुरक्त थे। एक दिन की बात है कि इनकी स्त्री बिना इनसे पूछे ही अपने मायके चली गई। तुलसीदास भी पीछे-पीछे वहीं पहुँचे। इस पर इनकी स्त्री ने लज्जित एवं क्रुद्ध होकर इनसे यह कहा:—

लाज न लागत आपुको, दौरे आयहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म मय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति॥

यह बात सुनते ही गुसाईं जी का हृदय अपनी स्त्री की ओर से हट कर श्री रामचंद्र जी के चरण-कमलों में लग गया। बीस साल तक संपूर्ण तीर्थों का पर्यटन करके ये चित्रकूट में आकर रहे; यहाँ से अयोध्या चले गए; और संवत् १६३१ में इन्होंने वहीं रामचरितमानस का आरंभ कर दिया। फिर ये काशी में आकर रहे। काशी में इनकी अनेक विद्वानों से भेंट हुआ करती थी। इनकी सब पुस्तकों में रामचरितमानस (तुलसी रामायण) सब से उत्कृष्ट है।

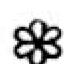
  

सत्संगति-महिमा

मज्जन फल देखिय ततकाला। काक होंहिं पिक बकहु मराला॥
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई। सतसंगतिमहिमा नहिं गोई॥
वालमीकि नारद घटयोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानव सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ॥
विनु सतसंग विवेक न होई। रामकृपा विनु सुलभ न सोई॥
सत्संगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला
शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥

विधिवश सुजन कुसंगति परहीं। फणिमणिसमनिजगुणअनुसरहीं
विधि हरिहर कवि कोविद वानी। कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे। शाक वणिक मणि गुण गण जैसे॥

बंदौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोय।
अंजलिगत शुभ सुमनजिमि, सम सुगंध कर दोय ॥

तेजस्वी-महिमा

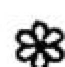
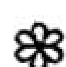
बोली चतुर सखी मृदु वानी। तेजवंत लघु गनिय न रानी ॥
कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुयश सकल संसारा ॥
रविमंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा ॥

मंत्र परम लघु जासु वश, विधि हरि हर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ, वश कर अँकुश खर्व ॥

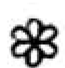
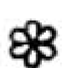
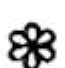
तप-महत्त्व

तप बल रचइ प्रपंच विधाता। तप बल बिष्णु सकल जग त्राता॥
तप बल शंभु करहिं संहारा। तप बल शेष धरहिं महिभारा॥
तप अधार सब दृष्टि भवानी। करहु जाइ तप अस जिय जानी॥

सुमित्र और कुमित्र

जे न मित्र दुख होंहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरिसम रजकै जाना। मित्र के दुख रज मेरु समाना॥
जिन्हके असिमति सहज न आई। ते शठ हठि कत करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुण प्रगटै अवगुणहिं दुरावा॥
देत लेत मन शंक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
विपति काल कर शतगुण नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुण एहा॥
आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥
सेवक शठ नृप कृपण कुनारी। कपटी मित्र शूल सम चारी॥

वर्षा और शरद वर्णन

लछिमन देखहु मोर गण, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्ति कहँ देखि ॥१॥

घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं ॥
बरसहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥
बुंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे ॥
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरेहि धन खल बौराई ॥
भूमि परत भा डाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी ॥
सिमिटिसिमिटि जल भरहिंतलावा। जिमि सद्गुण सज्जनपहँ आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होंहिं अचल जिमि जन हरि पाई ॥

हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि परै नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद तें, गुप्त होंहिं सद्ग्रंथ ॥२॥

दादुर ध्वनि चहुँ दिशा सुहाई। वेद पढ़ैं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भये विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलै नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ॥
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सम्पति जैसी ॥
निशि तप घन खद्योत विराजा। जनु दम्भिन कर मिला समाजा ॥

महा वृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरसे तृण नहिं जामा। जिमि हरिजन उर उपज न कामा॥
विविध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगण उपजे ज्ञाना॥

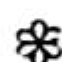
कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ विलाहिं।
जिमि कुपूत कुल ऊपजे, सम्पति धर्म नशाहिं॥३॥
कबहुँ दिवसमहँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
उपजै बिनसइ ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग॥४॥

वर्षा विगत शरद ऋतु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्त पंथ जल शोषा। जिमि लोभहिं सोखै संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्यागि करहिं जिमि ज्ञानी॥
जानि शरद ऋतु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥
पंक न रेणु सोह अस धरणी। नीतिनिपुण नृप की जस करणी॥
जल संकोच विकल भये मीना। अबुध कुटुम्बी जनु धनहीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकाशा। हरिजन इव परिहरि सब आशा॥
कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी। कोउ एकपाव भक्ति जिमि मोरी॥

चले हर्षि तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि।
जिमि हरिभक्ति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥५॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एकौ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न शंकरद्रोही॥
शरदातप निशि शशि अपहरई। संत दरश जिमि पातक टरई॥
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किये कुलनासा॥

भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय।
सद्‌गुरु मिले जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाय ॥६॥

धनुष-भंग-विवाद

तेहि अवसर सुनि शिवधनुभंगा। आए भृगुकुलकमलपतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुंड्र विराजा॥
सीस जटा ससि वदन सुहावा। रिसिवस कछुक अरुण हुइ आवा॥

भ्रकुटी कुटिल नयन रिसिराते। सहजहिं चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभकंध उर बाहु विशाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तूण दुइ बाँधे। धनु शरकर कुठार कल काँधे॥

संतवेष करनी कठिन, बरनि न जाइ स्वरूप।
धरि मुनितनु जनु बीररस, आयउ जहँ सब भूप॥१॥

देखत भृगुपति वेष कराला। उठे सकल भयबिकल भुआला॥
पितुसमेतकहि कहि निजनामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
जेहिसुभाव चितवहिं हितजानी। सो जानै जनु आयु खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बुलाइ प्रणाम करावा॥
आसिस दीन्ह सखी हरषानी। निजसमाज लै गईं सयानी॥
विश्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई॥
राम लषण दशरथके ढोटा। दीन्ह असीस जानि भल जोटा॥
रामहिं चितय रहे थकि लोचन। रूप अपार मारमदमोचन॥

बहुरि विलोकि विदेहसन, कहहु कहा अति भीर।
पूछत जान अजान जिमि, ब्यापेउ कोप शरीर॥२॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारण महीप सब आए॥
सुनत वचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥
अति रिस बोले वचन कठोरा। कहुजड़ जनक धनुष केहि तोरा॥
वेगि देखाउ मूढ़ नतु आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू॥

अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मनमाहीं ॥
सुर मुनि नाग नगरनरनारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
मन पछितात सीय महतारी। विधि सँवारि सब बात बिगारी ॥
भृगुपतिकर सुभाव सुनु सीता। अर्धनिमेष कलपसम बीता ॥

सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष विषाद कछु, बोले श्रीरघुवीर ॥३॥

नाथ शंभुधनुभंजनिहारा। होइहि कोउ इक दास तुम्हारा ॥
आएसु कहा कहिय किन मोही। सुनि रिसाय बोले मुनि कोही ॥
सेवक सो जो करै सेवकाई। अरिकरनी करि करिय लराई ॥
सुनहु राम जेहि शिवधनु तोरा। सहसबाहुसम सो रिपु मोरा ॥
सो बिलगाइ विहाइ समाजा। नतु मारे जैहैं सब राजा ॥
सुनि मुनिवचन लषन मुसुकाने। बोले परशुधरहिं अपमाने ॥
बहु धनुहीं तोरेउँ लरिकाई। कबहुँ न अस रिस कीन्ह गुसाईं ॥
इहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाय कह भृगुकुलकेतू ॥

रे नृपबालक कालबस, बोलत तोहिं न सँभार।
धनुहीसम त्रिपुरारिधनु, विदित सकल संसार ॥४॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे। देखा राम नयेके भोरे ॥
छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू ॥

बोले चितइ परशुकी ओरा। रे शठ सुनेसि सुभाउ न मोरा॥
बालक बोलि बधौं नहिं तोहीं। केवल मुनि जड़ जानसि मोहीं॥
बालब्रह्मचारी अति कोही। विश्वविदित क्षत्रीकुलद्रोही॥
भुजबल भूमि भूपबिनु कीन्हीं। विपुलबार महिदेवन दीन्हीं॥
सहस बाहु भुज छेदन हारा। परशु बिलोकु महीपकुमारा॥

मातुपितुहिं जनि सोच बस, करसि महीपकिशोर।
गर्भन के अर्भकदलन, परशु मोर अति घोर॥५॥

बिहँसि लषन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महाभटमानी॥
पुनि पुनि मोहिं देखाव कुठारा। चहत उड़ावन फूँकि पहारा॥
इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत डरि जाहीं॥
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पाँ परिय तुम्हारे॥
कोटिकुलिससम बचन तुम्हारा। वृथा धरहु धनु बान कुठारा॥

जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, क्षमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुवंसमणि, बोले गिरा गँभीर॥६॥

कौशिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालबस निजकुलघालक॥
भानु वंश राकेश कलंकू। निपट निरंकुश अबुध असंकू॥

काल कबल होइहि छिनमाहीं। कहौ पुकारि खोरि मोहिं नाहीं॥
तुम हटकहु जो चहहु उवारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा॥
लषनकहेउमुनि सुजसतुम्हारा। तुमहिं अछत को बरनै पारा॥
अपने मुख तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू। जनिरिसरोकि दुसहदुखसहहू॥
वीरवृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥

सूर समरकरनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलापु॥७॥

तुम तौ काल हाँकि जनु लावा। वार वार मोहिं लागि बुलावा॥
सुनत लषनके वचन कठोरा। परशु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोष मोहिं लोगू। कटुवादी वालक बधयोगू॥
वाल विलोकि वहुत मैं वाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा॥
कौशिक कहा क्षमिय अपराधू। वालदोष गुन गनहिं न साधू॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छाँडौं विनु मारे। केवल कौशिक शील तुम्हारे॥
नतु यहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहिं उऋण होतेउँ श्रम थोरे॥

गाधिसुअन कह हृदय हँसि, मुनिहिं हरि अरे सूझि।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि, अजहुँ न वूझ अवूझ॥८॥

कहेउ लपन मुनि शील तुम्हारा। को नहिं जान विदितसंसारा॥

मातुहि पितुहि उऋण भए नीके । गुरुऋण रहा सोच बढ़ जीके ॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा । दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा ॥
अब आनिय ब्यवहरिया बोली । तुरत देव मैं थैली खोली ॥
सुनि कटु वचन कुठार सुधारा । हाहा कहि सब लोग पुकारा ॥
भृगुवर परशु दिखावहु मोही । विप्र विचारि बचौं नृपद्रोही ॥
मिले न कबहुँ सुभट रणगाढ़े । द्विज देवता घरहिके बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सेनहिं लषन निवारे ॥

लषन उतर आहुतिसरिस, भृगुपति कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जलसम वचन, बोले रघुकुलभानु ॥९॥

नाथ करहु बालक पर छोहू । शुद्धदूधमुख करिय न कोहू ॥
जोपै प्रभुप्रभाव कछु जाना । तौकि बराबर करत अयाना ॥
जो लरिका कछु अनुचित करहीं । गुरु पित मातु मोद मन भरहीं ॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी । तुम सम सील धीर मुनि ज्ञानी ॥
रामवचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने ॥
हँसत देखि नख शिख रिसि व्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मनमाहीं । कालकूटमुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही । नीच मीचुसम लखै न मोही ॥

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पापकरमूल ।
जेहिवस जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्वप्रतिकूल ॥१०॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिय अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिय होइहिं पाँय पिराने॥
जो अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बुलाई॥
बोलत लषनहिं जनक डराहीं। मष्टकरहु अनुचित भल नाहीं॥
थर थर काँपहिं पुरनरनारी। छोट कुमार खोट अति भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तनु जरै होइ बलहानी॥
बोले रामहिं देइ निहोरा। बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा॥
मन मलीन तनु सुंदर कैसे। बिषरस भरा कनकघट जैसे॥

सुनि लक्ष्मण बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरुसमीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम॥११॥

अति बिनीत मृदु शीतल बानी। बोले राम जोरि जुगपानी॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालकबचन करिय नहिं काना॥
बररे बालक एक सुभाऊ। इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ॥
तिन्ह नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप बध बँध गुसाँई। मोपर करिय दास की नाँई॥
कहिय बेगि जेहिबिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करिय उपाई॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
यहिके कंठ कुठार न दीन्हा। तो मैं कहा कोप करि कीन्हा॥

गर्भ स्रवहिं अवनिपरमनि, सुनि कुठारगति घोर।
परशु अछत देखौं जियत, बैरी भूपकिसोर॥१२॥

बहै न हाथ दहै रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती॥
भयउ वामविधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कस काऊ॥
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनिसौमित्रिविहँसिसिरनावा॥
नाथ कृपामूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥
जौपै कृपा जरै मुनिगाता। क्रोध भए तनु राख विधाता॥
देख जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ यमपुर गेहू॥
वेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृपढोटा॥
विहँसे लषन कहा मुनि पाहीं। मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

परशुराम तब राम प्रति, बोले बचन सक्रोध।
शंभुसरासन तोड़ि शठ, करसि हमार प्रबोध॥१३॥

बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे॥
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहित छाँडु कहाउब रामा॥
छलतजिकरहु समर शिवद्रोही। बंधुसहित नतु मारौं तोही॥
भृगुपति कहहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिर नाए॥
गुनहु लषनकर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहुते बड़ दोषू॥
टेढ जानि शंका सब काहू। वक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू॥
रामकहेउरिसि तजियमुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहिरिसजाइकरियसोइ स्वामी। मोहिं जानि आपन अनुगामी॥

प्रभुसेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोष।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहूँ नहिं दोष॥१४॥

देखि कुठार वाण धनुधारी । भइलरिकहिरिसवीर विचारी ॥
नाम जान पै तुमहिं न चीन्हा । वंशसुभाव उतर तेहि दीन्हा ॥
जो तुम अवतेहु मुनि की नाँई । पदरज शिर सिसु धरत गुसाँई ॥
छमहु चूक अनजानत केरी । चहिय विप्रउर कृपा घनेरी ॥
हमहिंतुमहिंसरवरि कसनाथा । कहहु तु कहाँ चरण कहँ माथा ॥
राममात्र लघु नाम हमारा । परशुसहित वड़ नाम तुम्हारा ॥
देव एकगुण धनुष हमारे । नवगुण परम पुनीत तुमारे ॥
सव प्रकार हम तुमसन हारे । छमहु विप्र अपराध हमारे ॥

वारवार मुनि विप्रवर, कहा रामसन राम ।
वोले भृगुपति सरुष हुइ, तुहू बंधुसम वाम ॥१५॥

निपटहिंद्विजकरि जानेउ मोहीं । मैं जस विप्र सुनाऊँ तोहीं ॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू । कोप मोर अति घोर कृशानू ॥
समिध सेन चतुरंग सुहाई । महामहीप भए पशु आई ॥
मैं यहि परशु काटि वलि दीन्हा । समरयज्ञ जग कोटिन कीन्हा ॥
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे । वोलेसि निदरि विप्र के भोरे ॥
भंजेउ चाप दाप बड़ वाढ़ा । अहमितिमनहुँजीतिजग ठाढ़ा ॥
राम कहा मुनि कहहु विचारी । रिसअतिवड़ि लघुचूक हमारी ॥
छुवतहिं टूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥

जो हम निदरहिं विप्रवर, सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ असको जगसुभट जिहिं, भयवश नावहिं माथ ॥१६॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिकहोउ बलवाना॥
जो रण हमहिं प्रचारे कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥
क्षत्रियतनु धरि समरसकाना। कुलकलंक तेहि पामर जाना॥
कहौं स्वभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रण रघुवंसी॥
विप्रवंसकी अस प्रभुताई। अभय होइ जो तुमहिं डराई॥
सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपतिके। उघरे पटल परशुधरमतिके॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मोर मिटै संदेहू॥
देत चाप आपहिं चढ़ि गयऊ। परशुराम मन विस्मय भयऊ॥

जाना रामप्रभाव तव, पुलकि प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले बचन, प्रेम न हृदय समात॥१७॥

जय रघुवंश कमल वन भानू। गहन दनुजकुल दहन कृशानू॥
जय सुर विप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहारी॥
विनयशील करुणा गुणसागर। जयति बचनरचना अतिआगर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय शरीरछबि कोटि अनंगा॥
करौं कहा मुख एक प्रशंसा। जय महेश मन मानस हंसा॥
अनुचित वहुत कहेउँ अज्ञाता। क्षमहु क्षमामंदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहिं तपहेतू॥
अब भय कुटिल महीप डराने। जहँ तहँ कायर गवहिं पराने॥

देवन दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुरनरनारि सब, मिटा मोह भय शूल॥१८॥

दोहे

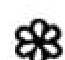
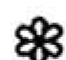
तुलसी संत सुअंब तरु फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत उतते वे फल देत॥

गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवत संतोष मन सब धन धूरि समान॥

दुर्जन दर्पनसम सदा करि देखौ हिय गौर।
सन्मुख की गति और है बिमुख भये पर और॥

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार॥

तुलसी पावस के समै धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं हमैं पूछि हैं कौन॥

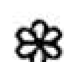
रहीम

परिचय

अब्दुलरहीम खानखाना का जन्म संवत् १६१० और मृत्यु-काल सवत् १६८२ है।

ये अकबर के प्रसिद्ध अभिभावक वैरमखाँ के पुत्र थे। संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के बड़े विद्वान् थे। हिंदी-काव्य के मर्मज्ञ और हिंदी-कवियों के आश्रयदाता थे। ये बादशाह अकबर के प्रधान सेनापति और मंत्री थे। बड़े ही गुणग्राहक तथा उदार थे। मुसलमान होते हुए भी ये कृष्ण के भक्त थे। गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ इनका बड़ा प्रेम था।

रहीम के दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी 'खेटकौतुकम्' नाम की एक पुस्तक ज्योतिष पर भी है।

सूक्तियाँ

नात नेह दूरै भली लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है ज्यों गड़ही को पानि ॥१॥

रहिमन प्रीति सराहिये मिले होत रंग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजी तजी सफेदी चून ॥२॥

जेहि अंचल दीपक दुरो हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे मित्र शत्रु ह्वै जात ॥३॥

जब लगि वित्त न आपने तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु रबि ताकर रिपु होय ॥४॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ संपति मिलति रहीम।
पेट लागि वैराट घर तपत रसोई भीम ॥५॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग ॥६॥

मान सहित विष खाय के शंभु भये जगदीस।
बिन आदर अमृत भख्यो राहु कटायो सीस ॥७॥

रहिमन खोजो ऊख में जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं यही प्रीति की हानि ॥८॥

रहिमन धागा प्रेम को मत तोरौ चटकाय।
टूटे से पुनि ना मिलै मिले गाँठि परि जाय ॥९॥

जो गरीब पर हित करैं ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥१०॥

रहिमन सीधी चालसों प्यादा होत वज़ीर।
फरजी शाह न ह्वै सकै टेढ़े की तासीर ॥११॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहैं बेर ॥१२॥

रहिमन जो ओछे बढ़ै तौ तितही इतराय।
प्यादा ते फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥१३॥

दीन विलोकत सबहिको दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै दीनबंधु सम होय ॥१४॥

प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय ॥१५॥

रहिमन प्रीति न कीजियो जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फाँकै तीन ॥१६॥

टूटे सुजन मनाइये जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिये टूटे मुक्ता हार ॥१७॥

संपति भरम गँवाइ कै हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है दिवस अकाशहिं माहिं ॥१८॥

रहिमन निज मन की व्यथा मनहीं राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय ॥१९॥

रहिमन अति मुसकिल भयो गाढ़े दोऊ काम।
साँच कहैं तो जग नहीं झूठै मिलै न राम ॥२०॥

यों रहीम यश होत है उपकारी के अंग।
बाँटनवारे को लगै ज्यों मिंहदी को रंग ॥२१॥

भूप गनत लघु गुनिन को गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन नभते भूमिलौ लखौ तो एकै रूप ॥२२॥

रहिमन मारग प्रेम को बिन बूझे मति जाव।
जौ डिगिहौं तौ फिर कहूँ नहिं धरिबे को पाँव ॥२३॥

ज्यों रहीम गति दीप की कुल सपूत की सोय।
बारो उजियारो लगै बढ़े अँधेरो होय ॥२४॥

सब कोऊ सबसों करैं राम जुहार सलाम।
हित अनहित तब जानिए जादिन अटके काम ॥२५॥

रहिमन जाचकता लहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूँ को भयो बावन आँगुर गात ॥२६॥

जो बड़ेन कौं लघु कहौ नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे कछु दुख मानत नाहिं ॥२७॥

ससि संकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है घटत घटत घटि सीम ॥२८॥

वैर प्रेम अभ्यास यश होत होत ही होय।
रहिमन इनको संग लै जनमत जगत न कोय ॥२९॥

रहिमन वे नर मरि चुके जो कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुये जिन मुख निकसत नाहिं ॥३०॥

धनि रहीम जल सरवरहिं लघुजिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय ॥३१॥

अमृत सम मधु वचन मैं रहिमन रिसकी गाँस।
जैसे मिसरी में मिली निरस बाँस की फाँस ॥३२॥

बसि कुसंग चाहत कुशल यह रहीम अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की रावण बसे परोस ॥३३॥

जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाँड़ति छोह ॥३४॥

खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै जानत सकल जहान ॥३५॥

बिगरी बात बनै नहीं लाख करौ किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को मथे न माखन होय ॥३६॥

उरग तुरग नारी नृपति नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिये पलटत लगै न बार ॥३७॥

रहिमन लाख भला करौ अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ साँप सहज धरि खाय ॥३८॥

दोहा दीरघ अरथ के आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥३९॥

खीरा सिर सों काटिये भरिये लोन लगाय।
रहिमन करुये मुखनको चहियत यहै सजाय ॥४०॥

मूढ़मंडली में सुजन ठहरत नाहिं विशेषि।
श्याम कचन में सेत ज्यों दूर कीजियत देखि ॥४१॥

अमर बेलि बिन मूल की प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि खोजत फिरिये काहि ॥४२॥

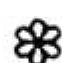
रहिमन देखि बड़ेन को लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवै सुई कहा करै तरवारि ॥४३॥

रहिमन थोरे दिनन को कौन करै मुँह स्याह।
नहीं ललन को परतिया नहीं करन को ब्याह ॥४४॥

रहिमन तब लगि ठहरिये दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं तुरतहिं करिय पयान ॥४५॥

रहिमन करिसम बल नहीं मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै चलत घिसावत नाक ॥४६॥

कहि रहीम संपति सगे बनत बहुत बहुरीत।
बिपति कसौटी जे कसे तेई साँचे मीत ॥४७॥

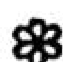
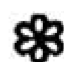
  

केशवदास

परिचय

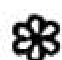
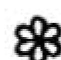
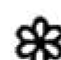
केशवदास का जन्म संवत् १६१२ और मृत्यु-काल संवत् १६७५ है।

ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे। ओड़छा के महाराजा रामसिंह के भाई इंद्रजीतसिंह इनका विशेष सम्मान करते थे। इनकी कविता बहुत गूढ़ है। इन्होंने रसिक-प्रिया, कवि-प्रिया, राम-चंद्रिका आदि आठ ग्रंथ लिखे हैं। इन सब में राम-चंद्रिका मुख्य है। ये हिंदी-साहित्य के आचार्य माने जाते हैं।

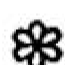
  

फुटकर

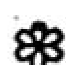
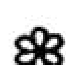
पंडित पुत्र सुधी पतिनी जु,
पतिव्रत प्रेम परायन भारी।
जानै सबै गुण मानै सबै जग,
दान विधान दया उर धारी॥
केशव रोगन ही सो वियोग,
संयोग सुभोगन सो सुखकारी।
साँच कहे जग माँह लहे यश,
मुक्ति यहे चहुँ वेद विचारी॥

लूटिबे के नाते पापपट्टनै तौ लूटियत,
तोरिबे को मोहतरु तोरि डारियतु है ।
घालिबे के नाते गर्व घालियत देवन के,
जारिये के नाते अघओघ जारियतु है ॥
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियत केशौदास,
मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है ।
राजा रामचंद्र जूके नाम जग जीतियतु,
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥

विप्र न नेगी कीजिये,
मूढ़ न कीजे मित्त ।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये,
दूषण सहित कवित्त ॥

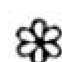
नरहरि

परिचय

नरहरि का जन्म संवत् १५६२ और मृत्यु-काल १६६७ है। अकबर के दरबार में इनकी अच्छी पूछ थी। कहते हैं—एक दिन एक कसाई एक गाय ले जा रहा था। अकस्मात् गाय छुट कर काँपती हुई नरहरि के घर में घुस गई। यह देख नरहरि का हृदय बड़ा व्याकुल हुआ। उन्होंने कसाई को गाय देने से इन्कार कर दिया; और एक छप्पय लिख उसे गाय के गले में लटका दिया; और उस गाय को अकब्बर के आगे पेश किया। कहते हैं—उस छप्पय का अकबर पर ऐसा असर पड़ा कि उसने केवल उसी गाय को नहीं छुड़वा दिया, किंतु अपने साम्राज्यभर में गो-वध का सर्वथा निषेध करवा दिया था। वह छप्पय निम्नलिखित है—

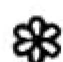
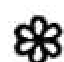
अरिहुँ दंत तृन धरैं, ताहि मारत न सबल कोइ।
हम संतत तृन चरहिं, वचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिंदुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरुकहिं न पियावहिं॥
कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनो, विनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥

सुना जाता है—इन्होंने नीति पर भी दो ग्रन्थ लिखे हैं।

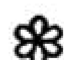
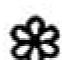
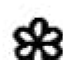
  

सुभाषित

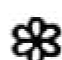
ज्ञानवान हठ करै निधन परिवार बढ़ावै।
बँधुआ करै गुमान धनी सेवक ह्वै धावै॥
पंडित किरिया-हीन राँड दुरबुद्धि प्रमानै।
धनी न समझै धर्म नारि मरजाद न मानै॥
कुलवंत पुरुष कुलविधि तजै बंधु न मानै बंधुहित।
सन्यास धारि धन संग्रहै ये जग में मूरख विदित॥

सरवर नीर न पीवहीं स्वाति बूँद की आस।
केहरि कबहुँ न तृन चरै जो व्रत करै पचास॥
जो व्रत करै पचास विपुल गज्जूह विदारै।
धन है गर्व न करै निधन नहिं दीन उचारै॥
'नरहरि' कुल क सुभाव मिटै नहिं जबलग जीवै।
बरु चातक मरि जाय नीर सरवर नहिं पीवै॥

सर सर हंस न होत बाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफर न होत नारि पतिव्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत मलैगिर होत न बन बन।
फन फन मनि नहिं होत मुक्तजल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत हैं जन जन होत न भक्तिहरि।
नर सुनो सकल 'नरहरि' कहत सब नर होत न एक सरि॥

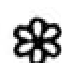
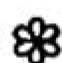
  

बिहारी

परिचय

विहारीलाल का जन्म संवत् १६६० और मृत्यु-काल १७२० है। ये चौवे ब्राह्मण थे। इनका जन्म-स्थान ग्वालियर के समीप बसुआ-गोविंदपुर नाम का गाँव है। ये जयपुर-नरेश महाराजा जयसिंह के दरबार में रहा करते थे। उन्हीं की आज्ञा से इन्होंने सात सौ दोहे लिखे, जो 'विहारी-सतसई' नाम से प्रसिद्ध हैं।

ये दोहे हिंदी-साहित्य-गगन के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। किसी भी कविता-ग्रन्थ पर इतनी टीकाएँ नहीं हुईं; जितनी कि 'विहारी-सतसई' पर। विहारीलाल शृंगारी कवि थे। किंतु इन्होंने नीति, भक्ति आदि पर भी जो दोहे लिखे हैं, वे शिक्षाप्रद एवं अपने ढंग के आप ही हैं।

दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै स्यामु हरित दुति होइ ॥१॥

नेहु न नैननु कौं कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाइ ॥२॥

इन दुखिया अँखियान को सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलाहिं ॥३॥

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं बिकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ आगे कौन हवाल ॥४॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यौं आँखिनु सब देखियै आँखि न देखी जाहिं ॥५॥

कहा भयौ जो बीछुरे मो मनु तो मनु साथ।
उड़ी जाउ कितहूँ तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ ॥६॥

पत्राहीं तिथि पाइये वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौ रहै आनन ओप उजास ॥७॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा विपति बिदारनहार ॥८॥

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥९॥

मोर मुकुट की चंद्रिकन यौं राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सतचंद ॥१०॥

या अनुरागी चित्त की गति समझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्यामरँग त्यौं त्यौं उज्ज्वल होइ ॥११॥

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सुचित अंतर तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥१२॥

मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु काँचो काँच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥१३॥

बड़े न हूजै गुननु विनु विरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढ़्यौ न जाइ ॥१४॥

नर की अरु नलनीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊँचो होइ ॥१५॥

भूषन-भारु संभारि है क्यों इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाँय न धर परैं सोभा हीं कैं भार ॥१६॥

बढ़त बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥१७॥

पहिरि न भूषन कनक के कहि आवत इहिं हेत।
दरपन के से मोरचे देह दिखाई देत ॥१८॥

कोटि जतन कोऊ करैं परै न प्रकृतिहुँ बीचु।
नलबल जलु ऊँचै चढ़ै अंत नीच को नीचु ॥१९॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़े दुख दंदु।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंदु ॥२०॥

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
विकट जुटे जौ लगु निपट खुलैं न कपट-कपाट ॥२१॥

पतवारी माला पकरि और न कछू उपाउ।
तरि संसार-पयोधि कौं हरि नावैं करि नाउ ॥२२॥

अरे हंस या नगर में जैयो आप विचारि।
कागन सों जिन प्रीति करि कोयल दई बिडारि ॥२३॥

कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाए बौराइ इहिं पाएँ हीं बौराइ ॥२४॥

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होई सुगंध ॥२५॥

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब मैं अपत कँटीली डार ॥२६॥

सोहतु संगु समान सौं यहै कहै सबु लोगु।
पान पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु ॥२७॥

संगति-दोषु लगै सबनु कहैति साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव संग भए कुटिल बंकगति नैन ॥२८॥

अति अगाधु अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ॥२९॥

कहै यहै स्रुति सम्रृत्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक राजा रोग ॥३०॥

या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि छाया-ग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ ॥३१॥

मरतु प्यास पिंजरा पर्‌यौ सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥३२॥

इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वै हैं फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल ॥३३॥

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु ॥३४॥

ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैंकहूँ फारि निहारैं नैन ॥३५॥

लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिं।
ऐ मुँहजोर तुरंग ज्यौं ऐंचत हूँ चलि जाहिं ॥३६॥

सोहतु ओढ़ैं पीत पटु स्याम सलौनैं गात।
मनौं नीलमनि सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात ॥३७॥

शीश मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसो सदा बिहारीलाल ॥३८॥

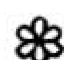
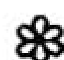
सकत न तुव ताते बचन मो रस कौ रसु खोइ।
खिन खिन औटे खीर लौं खरौ सवादिलु होइ ॥३९॥

जप माला छापा तिलक सरै न एको कामु।
मन काँचै नाचै वृथा साँचै राँचै रामु ॥४०॥

जसु अपजसु देखत नहीं देखत साँवल गात।
कहा करो लालच भरे चपल नैन चलि जात ॥४१॥

गुनी गुनी सबकैं कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं अरक-समानु उदोतु ॥४२॥

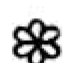
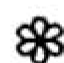
लाल तुम्हारे रूप की कहौ रीति यह कौन।
जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौन ॥४३॥

भूषण

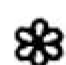
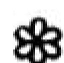
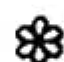
परिचय

भूषण का जन्म संवत् १६७० और मृत्यु-काल १७७२ है। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं, क्या था। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इनकी कविता पर मुग्ध होकर इन्हें 'कवि-भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था। तभी से इनका नाम भूषण पड़ा। ये तिकवाँपुर (ज़िला कानपुर) में उत्पन्न हुए थे। वीर-रस के उत्तम कवि थे। हिंदी के प्रसिद्ध कवि चिंतामणि और मतिराम इनके भाई थे। छत्रपति शिवाजी इनके मुख्य आश्रयदाता थे। 'शिवराजभूषण' इनका वीर रस-पूर्ण प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथ है।

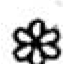
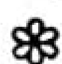
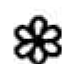
  

शिवाजी का माहात्म्य

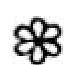
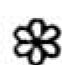
गरुड को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नागजूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥
'भूषन' अखंड नवखंड महिमंडल में,
तम पर दावा रविकिरनसमाज को।
पूरब पछाँह देश दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥

बेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदुनकी चोटी रोटी राखी है सिपाहिनकी,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में॥
मीडि राखे मुगल मरोडि राखे पातसाह,
वैरी पीसि राखे वरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥

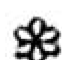
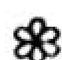
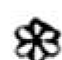
उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
तेउ सगबग निसि दिन चली जाति हैं।
अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सोहाती बोलैं अति अनखाती हैं॥
'भूषन' भनत सिंह साही के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुने अरि-नार बिललाती हैं।
कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती, घरैं
तीनि बेर खातीं ते वै तीनि बेर खाती हैं॥

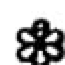
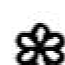
किबले के ठौर बाप बादसाह साहिजहाँ,
ताको कैद कियो मानों मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकरि के कैद कियो,
मेहर हू नाहिं माँ को जायो सगो भाई है॥
बंधु तौ मुरादबक्स बादि चूक करिबे को,
बीच लै कुरान खुदा की कसम खाई है।
'भूषन' सुकवि कहै सुनौ नवरंगजेब,
एते काम कीन्हें फेरि पातसाही पाई है॥

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती हैं॥
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं॥

अंदर ते निकसीं न मंदिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा ते बिहाल भई,
लाखन की भीर में सम्हारती न छाती हैं॥
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हयादारी चीर फारि मन झुंझलाती हैं।
ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं।

रसखान

परिचय

हिंदी के मुसलमान भक्त-कवियों में रसखान अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। इनके जन्म-काल के विषय में ठीक ठीक पता नहीं चलता; फिर भी इनका जन्म संवत् १६०० के लगभग का माना जाता है। ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। शुरू से ही प्रेम के पथिक थे। फिर वही प्रेम गूढ़ भगवद्भक्ति में परिणत होगया। इनकी भाषा व्रज-भाषा है। कहीं कहीं इन्होंने खड़ी बोली का भी प्रयोग किया है। इनकी कविता भक्ति-रस से परिपूर्ण है।

*　　　*　　　*

प्रेम का स्वरूप

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत प्रेम न जानत कोय।
जो जन जाने प्रेम तो मरे जगत क्यों रोय ॥१॥

प्रेम अगम अनुपम अमित सागर-सरिस बखान।
जो आवत इहिं ढिग बहुरि जात नाहिं रसखान ॥२॥

कमल-तंतु सो छीन अरु कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि प्रेम-पंथ अनिवार ॥३॥

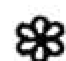
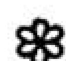
शास्त्रन पढ़ि पंडित भये कै मौलवी कुरान।
जु-पै प्रेम जान्यो नहीं कहा कियो रसखान ॥४॥

हरि के सब आधीन है हरी प्रेम-आधीन।
याही ते हरि आपुही याहि बड़प्पन दीन॥५॥

अभिलाषा

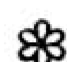
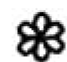
मानुस हौं तो वही 'रसखान'
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो
चरौं नित नंद की धेनु-मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो कियो ब्रजछत्र पुरंदर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं
नित काँलिंदीकूलकदंबकी डारन॥

वृंद

परिचय

वृंद का जन्म संवत् १७३० और मृत्युकाल १८०० के लगभग है। ये मेड़ता (जोधपुर) के निवासी थे। कृष्णगढ़ के महाराज राजसिंह इनके शिष्य थे। इनके वंशधर कृष्णगढ़ में अबतक वर्तमान हैं। औरंगज़ेब का पोता अज़ीमुश्शान व्रज-भाषा और उर्दू का अच्छा कवि था। वह कवियों का आश्रयदाता भी था। उसने ढाके में इनकी कविता सुनी थी, जो उसे बहुत पसन्द आई; और उसने इनका बहुत सम्मान किया। इनके नीति-संबंधी दोहे 'वृंद-सतसई' नाम से प्रसिद्ध हैं। भाषा व्रज-भाषा है, जो बड़ी सरस है। दृष्टांत और बोल-चाल के रूप में इनके दोहों का पर्याप्त प्रयोग होता है।

सूक्तियाँ

नीकी पै फीकी लगै विन अवसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध में रस शृँगार न सुहात ॥१॥

जो जाको गुन जानहो सो तिहिं आदर देत ।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी हेत ॥२॥

रस अनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ ।
बीछू मंत्र न जानहीं साँप पिटारे हाथ ॥३॥

कैसे निबहै निबल जन करि सबलन सों गैर ।
जैसे बस सागर विषे करत मगर सों बैर ॥४॥

दीबो अवसर को भलो जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम ॥५॥

अपनी पहुँच विचारि कै करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर ॥६॥

पिसुनछल्यो नर सुजनसों करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को पीवत छाँछहि फूँकि ॥७॥

विद्या-धन उद्यम बिना कहौ जु पावै कौन।
विना डुलाये ना मिलै ज्यों पंखा की पौन ॥८॥

ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल-जल घटत घटत घटि जाय ॥९॥

बुरे लगत सिख के वचन हिये विचारो आप।
करुवी भेषज विन पिये मिटै न तन की ताप ॥१०॥

फेर न ह्वै है कपट सों जो कीजै व्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥११॥

नयना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी भली बुरी कहि देत ॥१२॥

अति परचै ते होत है अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चंदन देति जराय ॥१३॥

सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को दीपहिं देत बुझाय ॥१४॥

कछु बसाय नहिं सबलसों करै निबल पर जोर।
चलै न अचल उखार तरु डारत पवन झकोर ॥१५॥

रोष मिटे कैसे कहत रिस-उपजावन बात।
ईंधन डारे आग मों कैसे आग बुझात ॥१६॥

दुष्ट न छाडै दुष्टता कैसे हूँ सुख देत।
धोये हूँ सौ बेर के काजर होत न सेत ॥१७॥

जैसो बंधन प्रेम को तैसो बंध न और।
काठहि भेदै कमल को छेदि न निकरै भौंर ॥१८॥

जे चेतन ते क्यों तजैं जाको जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो फिरत अचेतन लोह ॥१९॥

जो पावै अति उच्च पद ताकौ पतन निदान।
ज्यौं तपि तपि मध्याह्नलौं अस्त होतु है भान ॥२०॥

जिहि प्रसंग दूषन लगे तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली-हाथ ॥२१॥

जाके सँग दूषन दुरै करिये तिहि पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब सुरा अहीरी-पानि ॥२२॥

मूरख गुन समझै नहीं तौ न गुनी में चूक।
कहा घटयो दिन को विभौ देखै जो न उलूक ॥२३॥

करै वुराई सुख चहै कैसे पावै कोइ।
रोपै विरवा आक को आम कहाँ ते होइ ॥२४॥

वहुत निवल मिलि वल करैं करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी करी-निवंधन होय ॥२५॥

साँच झूँठ निर्णय करै नीति-निपुन जो होय।
राजहंस विन को करै छीर नीर को दोय ॥२६॥

वीर पराक्रम ना करे तासों डरत न कोइ।
वालकहू को चित्र को वाघ खिलौना होइ ॥२७॥

उत्तम जन सों मिलत ही अवगुन सो गुन होय।
घनसँग खारो उदधि मिलि वरसै मीठो तोय ॥२८॥

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें सिल पर परत निसान ॥२९॥

भली करत लागत विलम विलम न वुरे विचार।
भवन वनावत दिन लगै ढाहत लगत न वार ॥३०॥

कुल सपूत जान्यौ परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार विरवान के होत चीकने पात ॥३१॥

कछु कहि नीच न छेड़िये भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच में उछरि विगारै अंग ॥३२॥

ऊपर दरसै सुमिल सी अंतर अनमिल आँक।
कपटी जन की प्रीति है खीरा की सी फाँक ॥३३॥

जूआ खेले हेतु है सुख संपति को नास।
राजकाज नलते छुट्यो पाँडव किय बनवास ॥३४॥

सरस्वति के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों त्यों बढ़ै विन खरचै घटि जात ॥३५॥

कहा कहौं विधि को अविधि भूले परे प्रवीन।
मूरख को संपति दई पंडित संपतिहीन ॥३६॥

वह संपति केहि काम की जिन काहू पै होउ।
नित्य कमावै कष्ट करि विलसै औरहि कोउ ॥३७॥

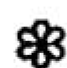
भले वुरे सब एक सों जौ लौं बोलत नाहिं।
जानि परतु हैं काक पिक ऋतु वसंत की माहिं ॥३८॥

हितहू की कहिये न तिहि जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी होत दिखाये क्रोध ॥३९॥

कारज धीरे होतु है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै केतक सींचो नीर ॥४०॥

छोटे मन में आय हैं कैसे मोटी बात।
छेरी के मुँह में दियौ ज्यों पेठा न समात ॥४१॥

होत निबाह न आपनो लीने फिरै समाज।
चूहा बिल न समात है पूँछ बाँधिये छाज ॥४२॥

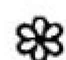
  

बैताल

परिचय

बैताल का जन्म संवत् १७३४ के आस-पास हुआ था। मृत्यु-काल भी अनुमान से १८०० के लगभग है।

ये बंदीजन थे। इन्होंने प्रायः नीति-विषयक छंदों की रचना की है। ये छंद इन्होंने अपने आश्रयदाता विक्रमशाह को संबोधन करके लिखे हैं। भाषा सीधी-साधी है।

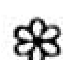
छप्पय

जीभि जोग अरु भोग जीभि बहु रोग बढ़ावै।
जीभि करै उद्योग जीभि लै कैद करावै॥
जीभि स्वर्ग लै जाय जीभि सब नरक दिखावै।
जीभि मिलावै राम जीभि सब देह धरावै॥
निज जीभि ओंठ एकत्र करि बाँट सहारे तोलिये।
'बैताल' कहै विक्रम सुनो जीभि सँभारे बोलिये॥१॥

टका करै कुलहूल टका मिरदंग बजावै।
टका चढ़ै सुखपाल टका सिर छत्र धरावै॥
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़ लड़ैया॥
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रात दिन।
'वैताल' कहै विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन॥२॥

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥
बाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै॥
अरु बे-नियाव राजा मरै तबै नींद भरि सोइये।
'वैताल' कहै विक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥३॥

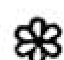
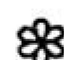
मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिंता नहिं मानै॥
मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै।
गाढ़े सँकरे काम मर्द के मर्दै आवै॥
पुनि मर्द उनहिं को जानिये दुख-सुख साथी दर्द के।
'वैताल' कहै विक्रम सुनो लच्छन हैं ये मर्द के॥४॥

गिरिधर

परिचय

गिरिधर जी का जन्म संवत् १७७० और मृत्युकाल संवत् १८४४ के लगभग है। इनकी कुंडलियाँ हिंदी में बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रायः सभी कुंडलियाँ नीति-विषयक हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 'साईं' शब्द से प्रारंभ होने वाली सब कुंडलियाँ इनकी स्त्री की बनाई हुई हैं। इनके जीवन के विषय में कुछ पता नहीं चलता; किंतु इनकी भाषा को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि ये कदाचित् अवध के रहने वाले हों।

कुंडलियाँ

साईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कंस को गयउ दुहन को राज॥
गयउ दुहुन को राज बाप बेटा में बिगरी।
दुसमन दावागीर हँसै महिमंडल नगरी॥
कह 'गिरिधर' कविराय जुगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई॥१॥

जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग।
जो चाहै लेतो वनै तो करि डारु निपंग॥
तो करि डारु निपंग भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगंदैं खाय चित्त में एक न दीजै॥
कह 'गिरिधर' कविराय खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय हरी धन धरती जाकी॥२॥

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।
चंचलजल दिन चारिको ठाँउ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान जियत जगमें जस लीजै।
मीठे बचन सुनाय विनय सबही की कीजै॥
कह 'गिरिधर' कविराय अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निसिदिन चारि रहत सबही के दौलत॥३॥

गुनके गाहक सहस नर विनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला शव्द सुनै सब कोय॥
शव्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को रंग एक काग सब भये अपावन॥
कह 'गिरिधर' कविराय सुनो हो ठाकुर मन के।
विनु गुन लहै न कोय सहसनर गाहक गुनके॥४॥

साईं सब संसार में मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में तब लग ताको यार॥
तब लग ताको यार यार सँगही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलैं॥
कह 'गिरिधर' कविराय जगत यहि लेखा भाई।
करत बे-गरजी प्रीति यार बिरला कोइ साईं॥५॥

साईं अवसर के पड़े को न सहै दुख द्वंद।
जाय विकाने डोम घर वै राजा हरिचंद॥
वै राजा हरिचंद करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी-वेष फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह 'गिरिधर' कविराय तपै वह भीम रसोईं।
को न करै घटि काम परे अवसर के साईं॥६॥

लाठी में गुण बहुत है सदा राखिये संग।
गहिर नदी नारा जहाँ तहाँ बचावै अंग॥
तहाँ बचावै अंग झपटि कुत्ता कहँ मारै।
दुश्मन दावागीर होयँ तिनहूँ को झारै॥
कह 'गिरिधर' कविराय सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छाँड़ि हाथ महँ लीजै लाठी॥७॥

बिना विचारे जो करै सो पीछे पछिताय।
काम विगारै आपनो जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान राग रंग मनहिं न भावै॥
कह 'गिरिधर' कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि कियो जो बिना विचारे॥८॥

बीती ताहि विसारि दे आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ बात जोई बनि आवै।
दुरजन हँसै न कोइ चित्त में खता न पावै॥
कह 'गिरिधर' कविराय यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख समुझि होइ बीती सो बीती॥९॥

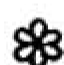
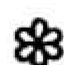
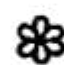
साँई अपने चित्त की भूलि न कहिये कोइ।
तब लग मन में राखिये जब लग कारज होइ॥
जब लग कारज होइ भूलि कबहूँ नहिं कहिये।
दुरजन हँसे न कोय आप सियरे ह्वै रहिये॥
कह 'गिरिधर' कविराय बात चतुरन के ताँई।
करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साँई॥१०॥

साईं अपने भ्रात को कबहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिये सदा राखिये पास॥
सदा राखिये पास त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रास दियो लंकेश ताहि की गति सुनि लीजै॥
कह 'गिरिधर' कविराय रामसों मिलियो जाई।
पाय विभीषण राज लंकपति बाज्यो साईं॥११॥

पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥
यही सयानो काम राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज शीश आगे धरि दीजै॥
कह 'गिरिधर कविराय बड़ेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी॥१२॥

कृतघन कबहुँ न मानहीं कोटि करै जो कोय।
सरवस आगे राखिये तऊ न अपनो होय॥
तऊ न अपनो होय भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै फेरि तिहि नहिं पहिचानै॥
कह 'गिरिधर' कविराय रहत नितही निर्भय मन।
मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन॥१३॥

राजा के दरबार में जैये समया पाय।
साईं तहाँ न वैठिये जहँ कोउ देय उठाय॥
जहँ कोउ देय उठाय वोल अनवोले रहिये।
हँसिये नहीं हहाय वात पूछे ते कहिये॥
कह 'गिरिधर' कविराय समय सों कीजे काजा।
अति आतुर नहिं होय वहुरि अनखैहैं राजा॥१४॥

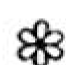
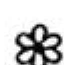
पद्माकर

परिचय

पद्माकर भट्ट का जन्म संवत् १८१० और मृत्यु-काल संवत् १८६० है। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता मोहनलाल भट्ट अच्छे पंडित और कवि थे। फलतः पिता के गुण पुत्र में भी संक्रांत हो गए। पद्माकर भट्ट ज्यों ही बड़े हुए, अच्छी कविता करने लगे; यहाँ तक कि अपने पिता से भी आगे बढ़ गए।

सुगरा के नोने अर्जुनसिंह ने इन्हें अपना मंत्र-गुरु बनाया। संवत् १८४६ में ये गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर के यहाँ गए, जो बड़े अच्छे योद्धा और पहले बाँदे के नव्वाब के यहाँ थे। 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' नाम की पुस्तक इन्होंने इन्हीं के नाम पर लिखी। कुछ दिन बाद ये जयपुर नरेश महाराज प्रतापसिंह के पुत्र जगतसिंह के दरबार में रहने लगे। उनकी स्तुति में ही इन्होंने 'जगद्विनोद' की रचना की।

पद्माकर ने और भी अनेक ग्रन्थ रचे, जिनमें 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली', 'जगद्विनोद', 'पद्माभरण' और 'रामरसायन' अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता शृंगार-रस-प्रधान है। पदावली स्निग्ध मधुर एवं सानुप्रास है। रीतिमार्गी कवियों में इनका उच्च स्थान है।

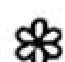
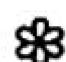
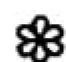
  

गंगा-सुषमा

फलित कपूर में न कीरति कुमोदिनी में,
कुंद में न कास में कपास में न कंद में।
कहै 'पदमाकर' न हंस में न हास हू में,
हिम में न हेरि हारो हीरन के वृंद में॥
जेती छवि गंग की तरंगन में ताकियत,
तेती छवि छीर में न छीरधि के छंद में।
चैत में न चैत चाँदनी हू में चमेलिन में,
चंदन में है न चंदचूड़ में न चंद में॥

वसंत-वर्णन

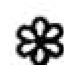
और भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर-भीर,
    और डौर झौरन में बौरन के ह्वै गये।
कहै 'पदमाकर' सु औरे भाँति गलियान,
    छलिया छबीले-छैल और छबि-छ्वै गये॥
और भाँति विहंग-समाज में अवाज होत,
    ऐसो ऋतुराज केन आज दिन ह्वै गये।
औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रंग,
    औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गये॥

दीनदयाल गिरि

परिचय

दीनदयाल गिरि का समय संवत् १८५६ से लेकर १६१५ तक का है। ये काशी में एक पाठक ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए थे। ये पाँच-छः-वर्ष के ही थे कि इनके पिता ने इन्हें महंत कुशागिरि के निरीक्षण में छोड़ दिया। ये महंत जी के गायघाट के मठ में रहा करते थे। संस्कृत और हिंदी के पूर्ण विद्वान् थे। इनकी अन्योक्तियाँ निरुपम हैं; भाषा शुद्ध और मँजी हुई। इनके अनेक ग्रंथों में 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' हिन्दी-साहित्य का अमूल्य रत्न है।

कुंडलियाँ

जिन तरुको परिमल परसि लियो सुजस सब ठाम।
तिन भंजन करि आपनो कियो प्रभंजन नाम॥
कियो प्रभंजन नाम बड़ो कृतघन बरजोरी।
जब जब लगी दवागि दियो तब झोंकि झकोरी॥
बरनै 'दीनदयाल' सेउ अब खल थल मरु को।
ले सुख सीतल छाँह तासु तोरथो जिन तरु को॥१॥

नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार की बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीली डार होहिगी ग्रीषम आये।
लुवैं चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताये॥
बरनै 'दीनदयाल' फूल जौलौं तो पाहीं।
रहे घेरि चहुँ फेरि फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥२॥

भारी भार भर्यौ वनिक तरिवो सिंधु अपार।
तरी जरजरी फँसि परी खेवनहार गँवार॥
खेवनहार गँवार ताहि पर पौन झकोरै।
रुकी भँवर में आय उपाय चलै न करोरै॥
बरनै 'दीनदयाल' सुमिर अब तू गिरधारी।
आरत जन के काज कला जिन निज संभारी॥३॥

कोई संगी नहिं उतै है इतही को संग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते सब सों सहित उमंग॥
सब सों सहित उमंग बैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव सँयोग फेरि यह मिलि है नाहीं॥
बरनै 'दीनदयाल' पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल पथी जैहैं सब कोई॥४॥

दोहे

हिय में हरि हेरयो नहीं हेरत फिरयो जहान।
ज्यौं निज में मृग भूलि मद खोजत फिरयो अजान ॥१॥

जैसे जल लै बाग को सिंचत मालाकार।
तैसे निज जन को सदा पालत नंदकुमार ॥२॥

पराधीनता दुख महा सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषैं कनक पींजरे दीन ॥३॥

जग-दुख को दारन करैं साधक लहि सत संग।
पाय जडीबल नकुल ज्यौं नासै भीम भुजंग ॥४॥

पुलकित होहिं प्रवीन सुनि वुध-बानी न अजान।
ससि-मयूख तें चंद्रमणि द्रवै न कठिन पखान ॥५॥

लखियत कोई वस्तु जग बिना चाह मिलि जाय।
अचरज गति विधि की जथा काक-तालिका न्याय ॥६॥

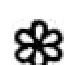
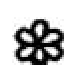
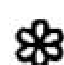
निरवल जुगल मिलाय करि काज कठिन बनि जाय।
अंध कंध पर वैठि करि पंगु यथा फल खाय ॥७॥

काँचे घट में जल जथा स्रवित होत अति जाय।
जाचक को कुल सील गुन विद्या तथा घटाय ॥८॥

जो मन प्रिय सो प्रिय लगै गुन अरु रूप विहीन।
त्यागि रतन हर जतन सों पन्नग भूषण कीन ॥९॥

धनी सुखी नहिं तोष बिन तुष्ट निधन सुखवान।
नृप सुखहित पचि पचि मरैं मन मुनि मोद महान ॥१०॥

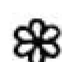
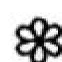
मलिन पिता के विमल सुत उपजत नाहिं संदेह।
होत पंक ते पद्म है पावन परमा गेह ॥११॥

हरिश्चंद्र

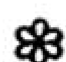
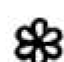
परिचय

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जन्म संवत् १६०७ और मृत्यु-काल १६४२ है। इनसे हिंदी-कविता का एक नया युग प्रारंभ होता है। ये खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों में ही सुंदर कविता करते थे। इनकी रचनाओं में प्राचीनता और नवीनता दोनों की संधि है। इनके पिता बाबू गोपालचंद्र (उपनाम गिरिधरदास जी) स्वयं अच्छे कवि थे। यद्यपि हरिश्चंद्र कुल ३५ वर्ष ही जिए, किंतु इस थोड़ी-सी अवस्था में ही इन्होंने छोटी बड़ी सब मिलाकर १७५ पुस्तकें लिखीं; कितनी ही सभाएँ खोलीं; कितने ही कवि-समाजों की स्थापना की। ये केवल कवि ही नहीं, हिंदी-कवियों के आश्रयदाता भी थे; और अनेक भाषाओं के पंडित थे।

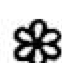
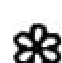
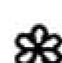
  

शारदी सुषमा

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली बन रही महमह महँकि सुबास।
नदी-तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनि सरन में फूले सोभा देत।
भौंर-वृंद जामैं लखौ गूँजि गूँजि रस लेत॥
वसन चाँदनी चंद मुख उडुगन मोती-माल।
कास फूल मधुहास यह सरद किधौं नव-बाल॥

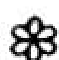
  

अहो यह सरद संभु ह्वै आई ।
कास फूल फूले चहुँ दिसि तें सोइ मनु भस्म लगाई ॥
चंद उदित सोइ सीस अभूषन सोभा लगति सुहाई ।
तासों रंजित घन-पटली सोइ मनु गज खाल बनाई ॥
फूले कुसुम मुंडमाला सोइ सोहत अति धवलाई ।
राजहंस सोभा सोइ मानों हासबिभव दरसाई ॥
अहो यह सरद संभु बनि आई ॥

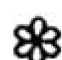
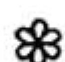
  

प्रेम-मंजरी

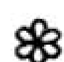
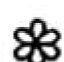
अहो हरि बस अब बहुत भई ।
अपनी दिसि बिलोकि करुना-निधि कीजै नाहिं नई ॥
जौ हमरे दोसन कों देखौ तौ न निवाह हमारौ ।
करिकै सुरत अजामिल गज की हमरे करम बिसारौ ॥
अब नहिं सही जात कोऊ विधि धीर सकत नहिं धारी ।
'हरीचंद' को वेगि धाइकै भुज भरि लेहु उबारी ॥

जानते जो हम तुमरी बानि।
परम अबार करन की जन पैं, हे करुना की खानि॥
तो हम द्वार देखते दूजो होते जहाँ दयाल।
करते नहिं विश्वास बेद पै जिन तोहिं कह्यौ कृपाल॥
अब तो आइ फँसे सरनन मैं भयो तुम्हारो नाम।
'हरीचंद' तासों मोहिं तारो बान छोड़ि घनश्याम॥

चंद मिटै सूरज मिटै मिटैं जगत के नेम।
यह दृढ़ श्री 'हरिचंद' को मिटै न अविचल प्रेम॥

बाल-छवि

छोटो सो मोहनलाल छोटे छोटे ग्वाल-बाल
छोटी छोटी चौतनी सिरन पर सोहैं।
छोटे छोटे भँवरा चकई छोटी छोटी लिये
छोटे छोटे हाथन सों खेलैं मन मोहैं॥

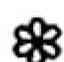
छोटे छोटे चरन सों चलत घुटुरुवन
चढ़ीं ब्रज-बाल छोटी छोटी छवि जोहैं।
'हरीचंद' छोटे छोटे कर पै माखन लिये
उपमा बरनि सकै ऐसे कवि को हैं॥

* * *

गंगा-वर्णन

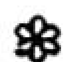
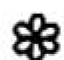
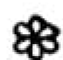
नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरि-पद-नख-चंद्रकांत-मन-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल मंडन भवखंडन सुर-सरबस॥
शिव-सिर-मालति-माल भगीरथ नृपति-पुराय-फल।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥

कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत ध्वजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई।
गंगा-छवि 'हरिचंद' कछु बरनी नहिं जाई॥

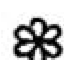
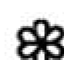
  

सीख

सहत विविध दुख मरि मिटत भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाँड़हीं जे जग साँचे लोग॥
बरु सूरज पच्छिम उगै विंध्य तरै जल माहिं।
सत्य बीर जन पै कबहुँ निज वच टारत नाहिं॥

जगत मैं घर की फूट बुरी।
घर के फूटहि सों विनसाई सुवरन लंकपुरी॥
फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नहिं पुजयो॥
फूटहि सों नवनंद बिनासे गयो मगध को राज।
चंद्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज॥
जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय।
तो अपुने घर मैं भूले हू फूट करो मति कोय॥

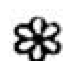
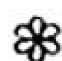
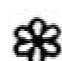
नाथूराम शंकर शर्मा

परिचय

शंकर जी का जन्म संवत् १९१६ और मृत्यु-काल संवत् १९८९ है। ये तेरह वर्ष की अवस्था में ही कविता करने लगे थे। आपकी कविता की भाषा पहले व्रजभाषा थी; किंतु बाद में आप खड़ी बोली में कविता करने लगे। समस्यापूर्ति में तो शंकर जी सिद्ध-हस्त थे। ये अनायास ही एक समस्या को अनेक रूपों में पूर्ण कर डालते थे। अपने ढलते जीवन-काल में मात्रिक छंदों को भी वर्णवृत्त की भाँति लिखने में इन्होंने विशेषता प्राप्त की थी।

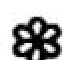
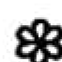
शंकर जी अच्छे वैद्य थे, और वैद्यक ही उनकी वृत्ति थी। आप संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी के भी पंडित थे। आर्यसमाज के अतिरिक्त इतर लोग भी आपका बहुत सम्मान करते थे।

'शंकरसरोज', 'अनुरागरत्न', 'गर्भरंडारहस्य' और 'वायस-विजय'—ये आपकी मुख्य कृतियाँ हैं।

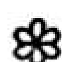
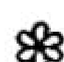
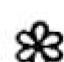
रसविहीन के लिये कविता वृथा है

भरिबो है समुद्र को शंबुक में,
छिति को छिगुनी पर धारिबो है।
बंधिबो है मृणाल सों मत्त करी,
जुही फूल सों शैल विदारिबो है॥
गनिबो है सितारन को कवि 'शंकर',
रेणु सों तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढन को,
सविता गहि भूमि पै डारिबो है॥

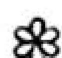
अंध जगत्

बोझ लदे हय हाथिन पै, खर खात खड़े नित जाय खुजाये।
बंधन में मृगराज पड़े, शठ स्यार स्वतंत्र पुकारत पाये॥
मानसरोवर में बिहरें बक, 'शंकर' मार मराल उड़ाये।
मान घटो गुरु लोगन को, जग बंचक पामर पंच कहाये॥

धर्म-जिज्ञासा

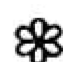
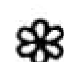
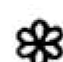
हे जगदीश देव ! मन मेरा
सत्य सनातन धर्म न छोड़े।
सुख में तुझ को भूल न जावे नेक न संकट में घबरावे।
धीर कहाय अधीर न होवे तमक न तार क्षमा का तोड़े॥
त्याग जीव के जीवन-पथ को टेढ़ा हाँक न दे तन-रथ को।
अति चंचल इंद्रिय घोड़ों की भ्रम से उलटी बाग न मोड़े॥
होकर शुद्ध महाव्रत धारे मलिन किसी का माल न मारे।
धार घमंड क्रोध-पाहन से हा ! न प्रेम रस का घट फोड़े॥
ऊँचे विमल विचार चढ़ावे तप के प्रातिभ-ज्ञान बढ़ावे।
हठ तज मान करे विद्या का 'शंकर' श्रुति का सार निचोड़े॥

श्रीधर पाठक

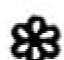
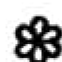
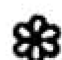
परिचय

पाठक जी का जन्म संवत् १६१६ और मृत्यु-काल १६८५ है। आप खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों ही के अच्छे कवि थे। आपने अनेक कविता-ग्रन्थ लिखे और अनेकों का अनुवाद भी किया। आप अँग्रेज़ी लिखने में भी कमाल करते थे। आपने पहले-पहल अँग्रेज़ी कवि गोल्डस्मिथ की तीन रचनाओं के पद्यानुवाद—'एकांतवासी योगी', 'ऊजड़ग्राम' और 'श्रांत पथिक'—लिखकर यश उपार्जन किया था। आपने देश-प्रेम-संबंधी कविताएँ भी लिखी हैं। आपके कविता-ग्रन्थों में 'भारत-गीत' बहुत प्रसिद्ध है।

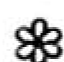
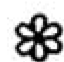
एकांतवासी योगी

साधारण अति रहन सहन मृदु बोल हृदय रहने वाला।
मधुर-मधुर मुसक्यान मनोहर मनुज-वंश का उजियाला॥
सभ्य, सुजन, सत्कर्म-परायण, सौम्य, सुशील, सुजान।
शुद्ध चरित्र, उदार, प्रकृति-शुभ, विद्या बुद्धि निधान॥
प्राण पियारे की गुण-गाथा, साधु कहाँ तक मैं गाऊँ।
गाते-गाते चुके नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ॥
विश्व-निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर।
बलिहारौं त्रिभुवन धन उस पर वारौं काम करोर॥

काश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल-अंबु-सर मुकुरन महँ मुख-बिंब निहारति।
अपनी छवि पर मोहि आपही तन, मन वारति॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी॥

स्वर्गीय वीणा

कहीं पै स्वर्गीय कोइ बाला,
सुमंजु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की-सी कैसी,
सुरीली गुंजार आ रही है॥

हरेक स्वर में नवीनता है,
हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है औ लीनता है,
अलाप अद्भुत मिला रही है॥

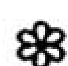
अलक्ष्य पर्दों से गत सुनाती,
तरल तरानों से मन लुभाती।
अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक,
सुधा की धारा बहा रही है॥

कोई पुरंदर की किंकरी है,
कि या किसी सुर की सुंदरी है।
वियोग तप्ता सी भोग मुक्ता,
हृदय के उद्‌गार गा रही है॥

कभी नई तान प्रेममय है,
कभी प्रकोपन कभी विनय है।
दया है दाक्षिण्य का उदय है,
अनेकों बानक बना रही है॥

भरे गगन में हैं जितने तारे,
हुए हैं बदमस्त गत पै सारे।
समस्त ब्रह्मांड भर को मानों,
दो उँगलियों पर नचा रही है॥

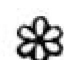
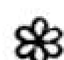
सुनो तो सुनने की शक्ति वालो,
सको तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन जोगन ये जो गगन में,
कि इतनी चुलबुल मचा रही है॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

परिचय

उपाध्याय जी का जन्म-स्थान निज़ामाबाद ज़िला आज़मगढ़ है। ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं। आपके पिता का नाम पंडित भोलासिंह उपाध्याय था। आपके कविता-गुरु सिख-संप्रदाय के बाबा सुमेरसिंह जी हैं। पंडित जी ने सारा जीवन साहित्य-सेवा में ही व्यतीत कर दिया है। आपकी अतुकांत खड़ी बोली की कविताओं का हिंदी-संसार में काफ़ी आदर है। आपका 'प्रियप्रवास' नाम का काव्य प्रसिद्ध है, जिस पर इन्हें इस वर्ष 'मंगला-प्रसाद पारितोषिक' भी मिला है। आप हिंदू-विश्वविद्यालय काशी में हिंदी के अध्यापक हैं। आप पहले कानूनगो रह चुके हैं। आपका उपनाम 'हरिऔध' है।

कर्मवीर

देखकर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं॥
काम कितना ही कठिन हो किंतु उकताते नहीं।
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं॥
हो गये यक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले फले॥१॥

आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही॥
भूलकर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं॥२॥

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये॥३॥

व्योम को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर॥
गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर॥
ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं॥४॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना॥
जो कि हँस-हँस के चबा लेते हैं लोहे का चना।
'है कठिन कुछ भी नहीं' जिनके है जी में यह ठना॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं॥५॥

ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
रेग को करके दिखा देते हैं वे सुंदर खली॥
वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल-फल॥६॥

काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते॥
वन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारवन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन॥७॥

पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वे।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे॥
गर्भ में जल-राशि के बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा-मंगल रचा देते हैं वे॥
भेद नभतल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥८॥

कार्य-थल को वे कभी नहिं पूछते 'वह है कहाँ'?
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहाँ॥
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहाँ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ॥
डाल देते हैं विरोधी सैकड़ों ही अड़चलें।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें॥९॥

जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा॥
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा॥
वन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी॥१०॥

सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि, विद्या, धन विभव के हैं जहाँ डेरे डले॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी॥११॥

फूल और काँटा

हैं जनम लेते जगह में एक ही,
एक ही पौधा उन्हें है पालता।
रात में उन पर चमकता चाँद भी,
एक ही सी चाँदनी है डालता॥१॥

मेह उन पर है बरसता एक सा,
एक सी उन पर हवायें हैं वहीं।
पर सदा ही यह दिखाता है हमें,
ढंग उनके एक से होते नहीं॥२॥

छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ,
फाड़ देता है किसी का वर वसन।
प्यार-डूबीं तितलियों का पर कतर,
भौंर का है बेध देता श्याम तन ॥३॥

फूल लेकर तितलियों को गोद में,
भौंर को अपना अनूठा रस पिला।
निज सुगंधों औ निराले रंग से,
है सदा देता कली जी की खिला ॥४॥

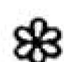
है खटकता एक सब की आँख में,
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर।
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे,
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥५॥

रामचरित उपाध्याय

परिचय

उपाध्याय जी का जन्म-काल संवत् १६२६ है । आप सरयू-पारीण ब्राह्मण हैं । आपका जन्म-स्थान गाजीपुर है । आप खड़ी-बोली के अच्छे कवि हैं । संस्कृत के पंडित हैं । आपकी सर्व-श्रेष्ठ रचना 'रामचरित-चिंतामणि' है । इसमें सारी रामायण-कथा खड़ी बोली में दी गई है ।

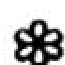
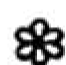
कुसंग

अति खल की संगति करने से जग में मान नहीं रहता है।
लोहे के सँग में पड़ने से घन की मार अनल सहता है॥

सब से नीति-शास्त्र कहता है दुष्ट-संग दुख का दाता है।
जिस पय में पानी रहता है वही खूब औटा जाता है॥

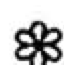
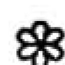
उनके प्राण नहीं बचते हैं जिनको दुर्जन अपनाते हैं।
जो गेहूँ के संग रहते हैं वे ही घुन पीसे जाते हैं॥

जहाँ एक भी दुष्ट रहेगा वह समाज क्यों चल पावेगा।
जहाँ तनिक भी अम्ल पड़ेगा। मनों दूध भी फट जावेगा॥

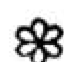
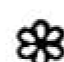
सपूत

चंदन, चंद, उशीर, हिमोपल हिम-रजनी भी और कपूर,
सब मिलकर भी नहीं करेंगे मानव-हृदय-ताप को दूर।
पर सपूत जिस कुल में होगा उसका समय आप ही आप;
पलट जायगा, यश फैलेगा मिट जावेगा सब संताप।
विमल चित्त हो, दानशील हो शूरवीर हो, सरल विचार,
सत्य-वचन हो, प्रेमयुक्त हो करे सभी से सम व्यवहार।
ज्ञानी, सहृदय, हो उपकारी और गुणी, हो अपना धर्म;
कभी न छोड़े देशभक्त हो ये सब सत्पुत्रों के कर्म॥

कपूत

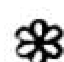
आलस-रत, शोकातुर, लंपट कपटी और सदा बलहीन,
मानस-मलिन, सदा निद्रातुर लोभी और अकारण दीन,
ऐसे सुत से क्या फल होगा हे चतुरानन! दे वरदान;
कभी कपूत किसी को मत दे चाहे कर दे निस्संतान॥
पर से प्रेम, द्रोह अपने से करते नित्य दुष्ट-गुण गान,
गुरुजन की निंदा कर हँसते अपने को कहते गुणवान,
काला अक्षर भैंस बराबर पर तो भी रखते अभिमान,
क्रोधानल में जलते रहते यही कपूतों की पहिचान॥

रामचंद्र शुक्ल

परिचय

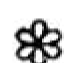
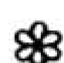
शुक्ल जी का जन्म-काल संवत् १६४१ है। आप सरयूपारीण ब्राह्मण हैं। आजकल आप हिंदू-विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक हैं। हिंदी-साहित्य के विद्वानों में आप एक विशेष स्थान रखते हैं। आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। जायसी-ग्रन्थावली और हिंदी-साहित्य का इतिहास आपकी पुस्तकों में मुख्य हैं। आपने आर्नल्ड लिखित 'लाइट आव् एशिया' का पद्यानुवाद भी किया है, जो 'बुद्धचरित' नाम से प्रसिद्ध है। आपकी कविता सरस होती है।

आमंत्रण

दृग के प्रतिरूप सरोज हमारे उन्हें जग ज्योति जगाती जहाँ;
जल बीच कलंक-करंबित कूल के दूर छटा छहराती जहाँ;
घन अंजनवर्ण खड़े तृणजाल की झाँई पड़ी दरसाती जहाँ;
बिखरे बक के निखरे सित पंख विलोक बकी बिक जाती जहाँ;
द्रुम-अंकित, दूब-भरी, जलखंड-जड़ी धरती छवि छाती जहाँ;
हर हीरक-हेम-मरक्त-प्रभा, ढल चंद्रकला है चढ़ाती जहाँ;
हँसती मृदु मूर्ति कलाधर की कुमुदों के कलाप खिलाती जहाँ;
घन-चित्रित अंबर अंक धरे सुषमा सरसी सरसाती जहाँ;

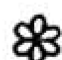
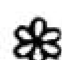
निधि खोल किसानों के धूल-सने श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ;
चुन के, कुछ चोंच चला करके चिड़िया निज भाग बँटाती जहाँ;
कगरों पर काँस की फैली हुई धवली अवली लहराती जहाँ;
मिल गोपों की टोली कछार के बीच है गाती औ गाय चराती जहाँ;
जननी धरणी निज अंक लिए बहु कीट पतंग खेलाती जहाँ;
ममता से भरी हरी बाँह की छाँह पसार के नीड़ बसाती जहाँ;
मृदु वाणी, मनोहर वर्ण अनेक लगाकर पंख उड़ाती जहाँ;
उजली कँकरीली तटी में धँसी तनु धार लटी बल खाती जहाँ;
दलराशि उठी खरे आतप में हिल चंचल चौंध मचाती जहाँ;
उस एक हरे रँग में हलकी गहरी लहरी पड़ जाती जहाँ;
कल कर्बुरता नभ की प्रतिबिंबित खंजन में मन भाती जहाँ;
कविता वह! हाथ उठाए हुए, चलिए कविवृंद बुलाती वहाँ;

मैथिलीशरण गुप्त

परिचय

गुप्त जी का जन्म-काल संवत् १६४३ है। आप चिरगाँव झाँसी के निवासी हैं। आप खड़ी बोली के उच्च कोटि के कवि माने जाते हैं। विद्यार्थियों में इनकी कविता का पर्याप्त प्रचार है। आपने पच्चीस के लगभग पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें भारत-भारती, जयद्रथवध, यशोधरा, साकेत आदि अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

उद्‌बोधन

हतभाग्य हिंदू-जाति ! तेरा पूर्व-दर्शन है कहाँ ?
वह शील, शुद्धाचार, वैभव देख, अब क्या है यहाँ ?
क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्न की-सी है नहीं ?
हम हों वही, पर पूर्व-दर्शन दृष्टि आते हैं कहीं ॥

बीती अनेक शताब्दियाँ पर हाय ! तू जागी नहीं ;
यह कुंभकर्णी नींद तूने तनिक भी त्यागी नहीं !
देखें कहीं पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर हमें—
आँसू बहावें शोक से, इस वेष में पाकर हमें !!

अब भी समय है जागने का देख आँखें खोल के,
सब जग जगाता है तुझे, जगकर स्वयं जय बोल के।
निःशक्त यद्यपि हो चुकी है किंतु तू न मरी अभी,
अब भी पुनर्जीवन-प्रदायक साज हैं सम्मुख सभी॥

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु है न उनमें शिष्य की भी योग्यता!
जो थे सभी के अग्रगामी आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं?

निज पूर्वजों के सद्गुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं।
हम हिंदुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं,
संसार में किस जाति को, किस ठौर वैसे प्राप्त हैं?

यदि हम किसी भी कार्य को करते हुये असमर्थ हैं?
तो उस अखिल-कर्ता पिता के पुत्र ही हम व्यर्थ हैं।
अपनी प्रयोजन-पूर्ति क्या हम आप कर सकते नहीं?
क्या तीस कोटि मनुष्य अपना ताप हर सकते नहीं?

क्या हम सभी मानव नहीं किंवा हमारे कर नहीं?
रो भी उठें हम तो बने क्या अन्य रत्नाकर नहीं?
भागो अलग अविचार से, त्यागो कुसंग कुरीति का,
आगे बढ़ो निर्भीकता से, काम है क्या भीति का॥

चिंता न विघ्नों की करो, पाणिग्रहण कर नीति का-
सुर-तुल्य अजरामर बनो पीयूष पीकर प्रीति का।
संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो,
चलते हुए निज इष्ट पथ में संकटों से मत डरो॥

जीते हुये भी मृतक-सम रहकर न केवल दिन भरो,
वर वीर बनकर आप अपनी विघ्न-बाधायें हरो।
है ज्ञात क्या तुमको नहीं तुम लोग तीस करोड़ हो,
यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन जग में जोड़ हो?

उत्साह-जल से सींचकर हित का अखाड़ा गोड़ दो,
गर्दन अमित्र अधःपतन की ताल ठोंक मरोड़ दो।
जो लोग पीछे थे तुम्हारे, बढ़ गये, हैं बढ़ रहे,
पीछे पड़े तुम दैव के सिर दोष अपना मढ़ रहे!

पर कर्म-तैल बिना कभी विधि-दीप जल सकता नहीं,
है दैव क्या? साँचे बिना कुछ आप ढल सकता नहीं।
रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़कर अविवेकता,
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसी से एकता॥

सब वैर और विरोध का बल-बोध से वारण करो,
है भिन्नता में खिन्नता ही एकता धारण करो।
है एकता ही मुक्ति ईश्वर-जीव के संबंध में,
वर्णैकता ही अर्थ देती इस निकृष्ट निबंध में॥

है कार्य ऐसा कौन सा साधे न जिसको एकता ?
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता ?
दो एक एकादश हुये, किसने नहीं देखे सुने ?
हाँ, शून्य के भी योग से हैं अंक होते दशगुने ॥

प्रत्येक जन प्रत्येक जन को बंधु अपना जान लो ;
सुख-दुःख अपने बन्धुओं का आप अपना मान लो ।
अनुदारता-दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों,
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों ॥

आचार में कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार में,
देखें हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में ?
प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है,
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है ॥

सर्वत्र एक अपूर्व युग का हो रहा संचार है,
देखो, दिनों दिन बढ़ रहा विज्ञान का विस्तार है।
अब तो उठो, क्या पड़ रहे हो व्यर्थ सोच-विचार में ?
सुख दूर, जीना भी कठिन है श्रम बिना संसार में ॥

पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल, सब लग रहे हैं काम में,
फिर क्यों तुम्हीं खोते समय हो व्यर्थ के विश्राम में ?
बीते हज़ारों वर्ष तुमको नींद में सोते हुये,
बैठे रहोगे और कब तक भाग्य को रोते हुये ?

इस नींद में क्या क्या हुआ यह भी तुम्हें कुछ ज्ञात है ?
कितनी यहाँ लूटें हुईं कितना हुआ अपघात है ?
होकर न टस से मस रहे तुम एक ही करवट लिये,
निज दुर्दशा के दृश्य सारे स्वप्न-सम देखा किये ॥

इस नींद में ही तो यवन आकर यहाँ आदृत हुये,
जागे न हा ! स्वातंत्र्य खोकर अंत में तुम धृत हुये ।
इस नींद में ही सब तुम्हारे पूर्व-गौरव हृत हुये,
अब और कब तक इस तरह सोते रहोगे मृत हुये ?

उत्तप्त ऊष्मा के अनंतर दीख पड़ती वृष्टि है,
बदली न किंतु दशा तुम्हारी नित्य शनि की दृष्टि है !
है घूमता फिरता समय तुम किंतु ज्यों के त्यों पड़े,
फिर भी अभी तक जी रहे हो, वीर हो निश्चय बड़े ॥

सोचो विचारो तुम कहाँ हो ? समय की गति है कहाँ ?
वे दिन तुम्हारे आप ही क्या लौट आवेंगे यहाँ ?
ज्यों ज्यों करेंगे देर हम वे और बढ़ते जायँगे,
यदि बढ़ गये वे और तो फिर हम न उनको पायँगे ॥

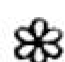
बैठे रहोगे हाय ! कब तक और यों ही तुम कहो ?
अपनी नहीं तो पूर्वजों की लाज तो रक्खो अहो ?
भूलो न ऋषि-संतान हो अब भी तुम्हें यदि ध्यान हो—
तो विश्व को फिर भी तुम्हारी शक्ति का कुछ ज्ञान हो ॥

बनकर अहो ! फिर कर्मयोगी वीर बड़भागी बनो,
परमार्थ के पीछे जगत में स्वार्थ के त्यागी बनो ॥

होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो,
सब देश-हितकर कार्य में अन्योन्य सहयोगी रहो।
धर्मार्थ के भोगी रहो बस कर्म के योगी रहो,
रोगी रहो तो प्रेम-रूपी रोग के रोगी रहो ॥

पुरुषत्व दिखलाओ पुरुष हो, बुद्धिबल से काम लो,
तब तक न थककर तुम कभी अवकाश या विश्राम लो-
जबतक कि भारत पूर्व के पद पर न पुनरासीन हो;
फिर ज्ञान में, विज्ञान में जब तक न वह स्वाधीन हो ॥

निज धर्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो,
दुख-दाह, आधि-व्याधि सब की एक साथ समाप्ति हो।
ऊपर कि नीचे एक भी सुर है नहीं ऐसा कहीं—
सत्कर्म में रत देख तुमको जो सहायक हो नहीं ॥

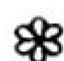
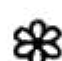
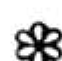
  

जयशंकर प्रसाद

परिचय

प्रसाद जी का जन्म-काल संवत् १६४६ है। आप काशी के रहने वाले हैं। आपने घर पर अध्यापक रखकर विद्या प्राप्त की है क्योंकि इनके पिता जी और बड़े भाई का देहांत शीघ्र ही हो गया था। आप प्रतिभाशाली कवि, नाटककार, कहानी-लेखक और पुरातत्त्व के अच्छे ज्ञाता हैं। हिन्दी के वर्तमान मौलिक नाटककारों में आपका स्थान सब से ऊंचा है। इनकी लेखन-शैली, भावप्रदर्शन तथा भाषा-सौष्ठव सराहनीय है। आपके कई नाटक नवीन होने के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। किंतु उनकी भाषा क्लिष्ट है। उनका अभिनय भी कठिन है।

आपकी कविताओं और कहानियों के संग्रह भी निकल चुके हैं।

किरण

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज ,
रँगी हो तुम किसके अनुराग ?
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन ,
किसी अज्ञात विश्व की विकल
वेदना दूती सी तुम कौन ?

अरुण-शिशु के मुख पर सविलास
सुनहली लट घुँघराली कांत,
नाचती हो जैसे तुम कौन?
उषा के अंचल में अश्रांत।

भला, उस भोले मुख को छोड़
चली हो किसे चूमने भाल,
खेल है कैसा या है नृत्य?
कौन देता है सम पर ताल?

कोकनद मधुधारा सी तरल,
विश्व में वहती हो किस ओर?
प्रकृति को देती परमानंद,
उठाकर सुंदर सरस हिलोर।

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन
मिलाती हो उससे भूलोक?
जोड़ती हो कैसा संबंध?
बना दोगी क्या विरज, विशोक?

चपल ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथशून्य अनंत,
सुमन मंदिर के खोलो द्वार,
जगे फिर सोया वहाँ वसंत।

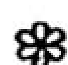
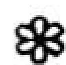
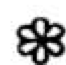
  

माखनलाल चतुर्वेदी

परिचय

चतुर्वेदी जी का जन्म-काल संवत् १९४५ है। आप गौड़ ब्राह्मण हैं। आपका जन्म-स्थान बाबई गाँव (जिला हुशंगाबाद) है । आप संपादन-कला में प्रवीण हैं। खड़ी बोली के अच्छे कवि हैं। आपकी कविता बहुत ऊँचे और गहरे भावों से सुसज्जित होती है। आप बड़े देश-भक्त हैं । आपकी देश-भक्ति-संबंधी कविताओं से विद्यार्थियों को खूब प्रोत्साहन मिलता है ।

आपकी कृतियाँ पत्र-पत्रिकाओं में 'एक भारतीय आत्मा' नाम से प्रकाशित होती हैं ।

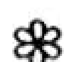
भारतीय विद्यार्थी

समय जगाता है, हम सब को झटपट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त कार्य में निर्भय लग जाना ही होगा।
दृढ़ करके मस्तिष्क मनस्वी बनकर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण पर जीवन-पुष्प चढ़ाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन बने हमीं से जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी॥१॥

समय एक पल भी न हमें, अब भाई व्यर्थ बिताना होगा,
शक्ति बढ़ा गौरव-गिरीश पर चढ़कर शौर्य्य दिखाना होगा।
सम्पति का उपयोग हमें अनुकूल बुद्धि से करना होगा,
बढ़ते हुये मार्ग में हमको नहीं कभी भी डरना होगा।
इस कर्तव्य-भूमि पर, तृण सम, प्रण पर प्राण गमाने होंगे,
वीरों ही के पद-चिह्नों पर अपने पैर जमाने होंगे ॥२॥

घर घर में जगदीशचन्द्र बसु होना काम हमारा ही है,
बनकर कृषक गर्व से कृषि को बोना काम हमारा ही है।
शिल्प बढ़ाकर ताजमहल फिर रचकर के दिखलाने होंगे,
व्यापारी बन देश देश में अपने पोत घुमाने होंगे।
रेल तार आकाश-यान ये हम क्या कभी बना न सकेंगे,
शुद्ध स्वदेशी पीतांबर क्या माधव को पहना न सकेंगे ॥३॥

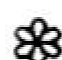
भारतमाता ! अपने इन पुत्रों को पहले का सा बल दे,
हे भारती ! दया कर क्षण में सब की दुर्बलता तू दल दे।
भारत की सच्ची आत्मायें आगे बढ़ें, उन्हें क्यों भय हो,
भारतवासी मिलकर गावें—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो'।
यह सुनकर जगतीतल कह दे, 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो',
प्रतिध्वनि में जगदीश्वर कह दें, 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो ॥४॥

रामनरेश त्रिपाठी

परिचय

त्रिपाठी जी का जन्म-काल संवत् १९४६ है। आप खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवि हैं। आपकी कविता राष्ट्रीय-भावना से ओत-प्रोत रहती है। आपका 'पथिक' नाम का प्रबंध काव्य प्रसिद्ध है। आपकी फुटकल कविताएँ भी मार्मिक होती हैं। आप हिंदी, उर्दू दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग करते हैं। 'कविता-कौमुदी' नाम से आपने हिंदी कविताओं का एक सुंदर एवं विस्तृत संग्रह प्रकाशित किया है।

तेरी छवि

हे मेरे प्रभु ! व्याप्त हो रही है तेरी छवि त्रिभुवन में ।
तेरी ही छवि का विकास है कवि की वाणी में मन में ॥

माता के निःस्वार्थ नेह में प्रेममयी की माया में ।
बालक के कोमल अधरों पर मधुर हास्य की छाया में ॥

पतिव्रता नारी के बल में वृद्धों के लोलुप मन में ।
होनहार युवकों के निर्मल ब्रह्मचर्यमय यौवन में ॥

तृण की लघुता में पर्वत की गर्व-भरी गौरवता में ।
तेरी ही छवि का विकास है रजनी की नीरवता में ॥

ऊषा की चंचल समीर में खेतों में खलियानों में।
गाते हुये गीत सुख-दुख के सरल-स्वभाव किसानों में॥

श्रमी किंतु निर्धन मजूर की अति छोटी अभिलाषा में।
पति की बाट जोहती बैठी गरीबिनी की आशा में॥

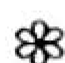
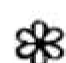
भूख-प्यास से दलित दीन की मर्म-भेदिनी आहों में।
दुखियों के निराश आँसू में प्रेमीजन की राहों में॥

मुग्ध मोर के सरस नृत्य में कोकिल के पंचम स्वर में।
वन-पुष्पों के स्वाभिमान में कलियों के सुंदर घर में॥

निर्जनता की व्याकुलता में संध्या के संकीर्तन में।
तेरी ही छवि का विकास है संतत परहित-चिंतन में॥

खोल चंद्र की खिड़की जब तू स्वर्ग-सदन से हँसता है।
पृथ्वी पर नवीन जीवन का नया विकास विकसता है॥

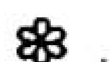
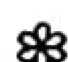
जी में आता है किरनों में घुलकर केवल पल भर में।
बरस पड़ूँ मैं इस पृथ्वी पर विस्तृत शोभा-सागर में॥

गोपालशरणसिंह

परिचय

गोपालशरणसिंह जी का जन्म-काल संवत् १९४८ है। आप नईगढ़ी रीवाँ के प्रसिद्ध इलाकेदार हैं। आप बाल्य-काल से ही कविता-प्रेमी हैं। आपकी कविताओं का खड़ी बोली में विशेष स्थान है। अधिकांश आपकी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में ही मिलेंगी। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'माधवी' नाम से प्रकाशित हुआ है।

चंद्र-खिलौना

देख पूर्ण चंद्रमा को मचल गया है शिशु,
लूँगा मैं खिलौना यह मुझे अति भाया है।
माता ने अनेक भाँति उसे समझाया, पर,
एक भी न माना और ऊधम मचाया है।
निज मुख चंद्र का रुचिर प्रतिबिंब तब,
दिखाकर दर्पण में उसे बहलाया है।
हँसकर कौतुक से बोली चारु चंद्र-मुखी,
ले तू अब चंद्र यह इसमें समाया है॥

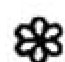
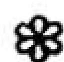
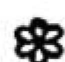
देख आरसी में परछाईं पूर्ण चंद्रमा की,
शिशु ने समोद निज हाथ को बढ़ाया है।
उसी क्षण चंद्र-वदनी के मुख-चंद्र का भी,
देख पड़ा वहाँ प्रतिबिंब मन भाया है।
जान पड़ता है उन दोनों को विलोक कर,
एक ही समान उन्हें विधि ने बनाया है।
लूँ मैं किसे और किसे छोड़ूँ हीन मान कर,
इस असमंजस में वह घबराया है॥

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

परिचय

निराला जी का जन्म-काल संवत् १६५५ है। आपकी बाल्य-काल से ही कविता की ओर विशेष रुचि है। आप संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता हैं। आपकी शैली निराली है। आपकी गणना नवीन युग उपस्थित करने वाले कवियों में है। 'परिमल' नामक आपका एक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुका है।

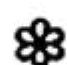
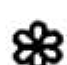
प्रपात के प्रति

अचल के चंचल क्षुद्र प्रपात!
मचलते हुए निकल आते हो;
उज्ज्वल! घन-वन-अंधकार के साथ
खेलते हो क्यों? क्या पाते हो?

अंधकार पर इतना प्यार,
क्या जाने यह बालक का अविचार
बुद्ध का याकि साम्य व्यवहार!

तुम्हारा करता है गतिरोध
पिता का कोई पूत अवोध,
किसी पत्थर से टकराते हो
फिरकर जरा ठहर जाते हो;

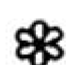
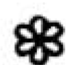
उसे जब लेते हो पहचान-
समझ जाते हो उस जड़ का सारा अज्ञान,
फूट पड़ती है ओठों पर तब मृदु मुसकान;
बस अजान की ओर इशारा करके चल देते हो,
भर जाते हो उसके अंतर में तुम अपनी तान।

सुमित्रानंदन पंत

परिचय

पंत जी का जन्म-काल संवत् १९५७ है। आपका जन्मस्थान कौसानी, ज़िला अल्मोड़ा है। आप प्रकृति-प्रेम में तल्लीन रहते हैं; अपने इसी स्वभाव के कारण आपने सेकेंड ईयर से ही कालेज छोड़ दिया था। आप आधुनिक हिंदी-साहित्य में एक नवीन धारा के प्रवर्तक समझे जाते हैं। आपकी कविता भाव-पूर्ण एवं सरस होती है। आपके कविता-ग्रन्थों में वीणा, पल्लव और गुंजन प्रसिद्ध हैं।

कामना

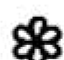
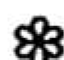
मेरा प्रतिपल सुंदर हो,
प्रतिदिन सुंदर, सुखकर हो,

यह पल-पल का लघु-जीवन
सुंदर, सुखकर, शुचितर हो!

हों बूँदें अस्थिर, लघुतर,
सागर में बूँदें सागर,

यह एक बूँद जीवन का
मोती-सा सरस, सुघर हो!

मधु के ही कुसुम मनोहर,
कुसुमों की ही मधु प्रियतर,
यह एक मुकुल मानस का
प्रमुदित, मोदित, मधुमय हो !
मेरा प्रतिपल निर्भय हो,
निःसंशय, मंगलमय हो,
यह नवनव पल का जीवन
प्रतिपल तन्मय, तन्मय हो !

छाया

कहो कौन हो दमयंती-सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई ?

पीले पत्तों की शय्या पर
तुम विरक्ति-सी मूर्च्छा-सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरह-मलिन दुख-विधुरा-सी ?

पछतावे की परछाईं-सी
तुम भूपर छाई हो कौन?
दुर्बलता-सी, अँगड़ाई-सी,
अपराधी-सी, भय से मौन?

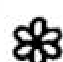
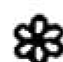
निर्जनता के मानस-पट पर
बार बार भर ठंडी साँस-
क्या तुम छिपकर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास?

निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर
नीरव शब्दों में निर्भर
किस अतीत का करुण चित्र तुम
खींच रही हो कोमलतर!

दिनकर-कुल में दिव्य जन्म पा,
बढ़कर नित तरुवर के संग,
मुरझे पत्रों की साड़ी से
ढँककर अपने कोमल अंग,

पर-सेवा-रत रहती हो तुम
रती नित पथ-श्रांति अपार।

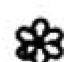
हाँ सखि! आओ बाँह खोल हम
लगकर गले जुड़ा लें प्राण;
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान।

रामकुमार वर्मा

परिचय

वर्मा जी का जन्म-काल संवत् १९६२ है। आप मध्यप्रदेश के सागर जिले के निवासी हैं। आपकी प्रवृत्ति बचपन से ही कविता की ओर है। आपमें एक ऊँचे कवि के लक्षण विद्यमान हैं। आपकी कोई कोई कविता तो अत्यंत हृदय-ग्राहिणी होती है। आप आजकल प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक हैं।

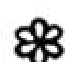
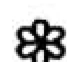
ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच,
जग कर सज कर रजनी-बाले !
कहाँ बेचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले ?
मोल करेगा कौन,
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी;
मत कुम्हलाने दो सूनेपन में,
अपनी निधियाँ न्यारी।

निर्झर के निर्मल जल में,
ये गजरे हिला हिला धोना।
लहर हहर कर यदि चूमे तो,
किंचित विचलित मत होना॥

होने दो प्रतिबिंब-विचुंबित,
लहरों ही में लहराना।
ले मेरे तारों के गजरे,
निर्झर-स्वर में यह गाना॥

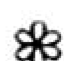
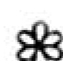
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुमसे हाय, न मोल करे।
तो फूलों पर ओस-रूप में,
बिखरा देना सब गजरे॥

सुभद्राकुमारी चौहान

परिचय

श्रीमती जी का जन्म-काल संवत् १९६१ है। आपका जन्म नाग-पंचमी के दिन इलाहाबाद में हुआ था। आपकी कविता सीधी-साधी हृदय-हारिणी और प्राय: देशभक्ति के रंग में रँगी हुई होती है। आपकी कुछ कविताओं का—जैसे 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी'—इत्यादि का हिंदी-संसार में खूब ही प्रचार हुआ। आप देशानुरागिनी वीरांगना हैं। आपकी वर्णन शैली सजीव है। स्त्री-कवियों में आपका स्थान प्रथम माना गया है। आपकी 'मुकुल' नामक पुस्तक से आपकी योग्यता का अच्छा परिचय मिलता है।

मेरा नया बचपन

बार बार आती है मुझको, मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया तू जीवन की—सब से मस्त खुशी, मेरी॥
चिंता-रहित खेलना-खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छंद।
कैसे भूला जा सकता है, बचपन का अतुलित आनंद॥
ऊँच नीच का ज्ञान नहीं था, छुआ-छूत किसने जानी?
बनी हुई थी अहा! झोपड़ी और चीथड़ों में रानी॥

किये दूध के कुल्ले मैंने, चूस अँगूठा अमृत पिया।
किलकारी कल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥

रोना और मचल जाना भी, क्या आनंद दिखाते थे।
बड़े बड़े मोती से आँसू, जयमाला पहनाते थे॥

मैं रोई, माँ काम छोड़कर आई, मुझको उठा लिया।
झाड़ पोंछ कर चूम चूम गीले गालों को सुखा दिया॥

दादा ने चंदा दिखलाया, नेत्र नीर-युत चमक उठे।
धुली हुई मुसकान देखकर, सब के चेहरे दमक उठे॥

सब सुख का साम्राज्य छोड़कर मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई थी, दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥

लाज भरी आँखें थीं मेरी, मन में उमंग रँगीली थी।
तान रसीली थी कानों में, चंचल छैल छबीली थी॥

दिल में एक चुभन सी थी यह, दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी, मैं सब के बीच अकेली थी॥

मिला, खोजती थी जिसको, हे बचपन! ठगा दिया तूने।
अरे जवानी के फंदे में, मुझको फँसा दिया तूने॥

रागरंग उसकी भी देखी, उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।
प्यारी-प्रीतम की रँगरलियों की भी स्मृतियाँ प्यारी हैं॥

माना मैंने युवा-काल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा पुरुषार्थ ज्ञान का उदय मोहने वाला है॥

किंतु यहाँ झंझट है भारी, युद्ध-क्षेत्र संसार बना।
चिंता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥

आजा, बचपन एक बार फिर, दे दे अपनी निर्मल शांति।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली, वह अपनी प्राकृत विश्रांति॥

वह भोलापन मधुर सरलता, वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा, तू मेरे मन का संताप॥

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नंदनवन सी फूल उठी यह, छोटी सी कुटिया मेरी॥

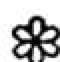
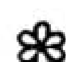
'मा ओ' कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिए हाथ में, मुझे खिलाने आई थी॥

पुलक रहे थे अंग दृगों में, कौतूहल था छलक रहा।
मुख पर था आह्लाद लालिमा, विजय गर्व था झलक रहा॥

मैंने पूछा-'यह क्या लाई ?' बोल उठी वह-'माँ काओ'।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा-'तुम्हीं खाओ'॥

पाया मैंने बचपन फिर से, बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर, मुझ में नव जीवन आया॥

मैं भी उसके साथ खेलती, गाती हूँ तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं भी, मैं बच्ची बन जाती हूँ॥
जिसे खोजती वर्षों से थी, उसको अब जाकर पाया।
भाग गया था, मुझे छोड़कर वह बचपन, फिर से आया॥

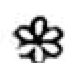
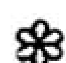
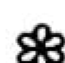
  

बलदेव शास्त्री

परिचय

शास्त्री जी का जन्म-काल संवत् १९६२ है। आपका जन्म-स्थान महेवड़ ग्राम (रुड़की, जिला सहारनपुर) है। आपकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं—

प्रतिमा नाटक, स्वप्न नाटक, शकुंतला नाटक, पंचरात्र, भग्नतंत्री, वेणीसंहार।

दीन कृषक

क्षाम-कंठ तप-काल में अहो,
अन्न-हेतु रवि चंड-ताप को
जो निरंतर निराश झेलते,
मृत्यु से सतत खेल खेलते।

रख कंध हलादि खेत में
पहुँचे जो, घन-वृष्टि-काल में
विजली कड़की, हताश हो
फिर आते निज गेह को अहो!

घर भी जिनका ढहा अहा !
टपका छप्पर, नीर है वहा,
कुठली, कुछ ज्वार से भरी,
जल-आगे सहसा वही चली।

गृहिणी, सब बाल रो रहे—
'हमको हा ! भगवान खो रहे !'
निकला तब छिद्र से चला,
सहसा ही सुत सर्प ने डसा।'

काँप काँप अति शीत काल में,
वस्त्र-हीन यमराज-गाल में
हा ! त्रिदोष-ज्वर से अकाल ही
जा रहे, भुगत दुःख ताप ही।

कौन हाय ! उपचार भी करे !
दुःख, रोग उनका यहाँ हरे !
वैद्यराज कहते यही अहो !
'फीस दो, अहह ! दूर, दूर हो !'

सब प्रकार सभी ठुकरा रहे,
विविध भाँति सभी दुख पा रहे,
तदपि भूतल सस्य-हरा-भरा
विरचते, श्रम-क्लांत नहीं जरा।'

इस विध सब संसार को करते जीवन दान।
क्षीण-देह मुकुलित-हृदय देकर भी निज प्राण॥

(भग्न-तंत्री से)

शब्दार्थ

मकरंद–पुष्प-रस

अमीर खुसरो

पौन–पवन, हवा

फूट–वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाला एक फल

अद्भुत–विचित्र

कबीर

मनुवाँ–मन

मोद–प्रसन्नता, खुशी

दिवस–दिन

परलै–प्रलय

रूँदें–कुचलता है

रंक–निर्धन, कँगाल

पैंठ–पण्य-स्थान, हाट, बाज़ार

लेहँड़े–झुंड, समूह

लाल–मानिक

निःचल–निश्चल, स्थिर

व्याधि–दुःख

उपाधि–उपद्रव, उत्पात, विघ्न

गंधी–सुगंधित द्रव्यों का बेचने वाला

रक्तसम–खून के समान

अगिन–आग

पैठ–प्रवेश करके, घुसकर

बौरा–पागल

हिरदै–हृदय में, मन में

साँचा–सत्य-स्वरूप, ईश्वर, ब्रह्म

आपा–स्वार्थ, अहंकार

आपदा–विपत्ति, मुसीबत

बिरानी–दूसरे की

संग्राम–युद्ध

खेत–रणक्षेत्र

सोधि के–ढूँढ कर

पारधि–शिकारी

नृग–एक राजा का नाम

मँडा–आरंभ हुआ

घमसान–घोर युद्ध

साही–बादशाह

समसेर–तलवार

जायसी

इहाँ–इधर

साह कै–अलाउद्दीन खिलजी का

भई अबाई–आगमन हुआ

अगिले–सेना के अग्रभाग के सैनिक

पछिले–सेना के पिछले भाग के सैनिक

पाछ–पीछे

छाए–फैले हुए थे

बाजा–पहुँच गया

सहस-बीस-बीस हजार

ओनइ–घिर कर

दूनौ-दल–दोनों दल, दोनों ओर की फ़ौज

समुद्र-दधि–दही का समुद्र

उदधि–(जल का) समुद्र

मेरु–मेरु पर्वत

खिखिंद–किष्किंधा पर्वत

कोपि–क्रोध करके

जुझार–वीर, बहादुर
मेले–भिड़ गए, आपस में लड़ने लगे
पेले–भिड़ा दिए, लड़वा दिए
सरग–स्वर्ग, आकाश
एक-भा–(धूल उड़ने के कारण) एक हो गए, भेद भाव नष्ट हो गया
जूह–यूथ, समूह, ढेर
दूना-वज्र-समूह–दोनों दल वज्र के तुल्य दृढ़ थे
सहँ–साथ
गरू-गुरु, भारी
गयंद–हाथी
तराहीं–नीचे
दर महँ–दल में, सेना में
चापि–पिचक कर
लेहीं–पकड़ लेता है
पायँतर–पैरों के तले
सिंघ होइ–सिंह होकर, सिंह का रूप धारण करके, बड़ी बहादुरी से
हनि–मार कर
गरब–हाथी के गंड-स्थल—सिर–से चूने वाला मद का पानी
रुहिर–रुधिर, रक्त, खून
मैमत–मदमत्त हाथी
सँभारहिं–सँभलते, ध्यान देते
गुद–छिद
जस–जैसे
धर–धरा, पृथिवी
बिलाहिं–विलीन हो जाते हैं, मिल जाते हैं
पंक–कीचड़
आठौवज्र जूझ–'आठ वज्र' का युद्ध। यह भ्रम है। वास्तव में वज्र एक ही है
भुइँ–भूमि, पृथिवी
फारा–फाड़
जो–तुल्य, समान
सेल–भाला, बल्लम
कादौ–कर्दम, कीचड़

कहँ·ताई–कहाँ तक
अछरी–अप्सरा
गए-मुख-रात–मुख लाल हो गया, सुर्खरुई पाई
सत–सत्य, स्वामी के प्रति कर्तव्य
मसि–स्याही, कालिख
परात–भागते हुए
लोहे–शस्त्र, हथियार
अगाउ–आगे
सलिल–जल, पानी
सायर–सागर, समुद्र
मस-खावा–मांस खाने वाले, मांसभक्षक (प्राणी)

भख–भोजन
पूरा–पूर्ण, भरा हुआ
विग–वृक, भेड़िया
जंवुक–गीदड़
तूरा–(आनंद की) तुरई
माँडो छावहिं–मंडप तन रहे हैं, (आकाश में) मंडलाकार घूम रहे हैं

साह–बादशाह अलाउद्दीन
हठि–हठ करके
अनी–सेना, फ़ौज
परावा–दूसरों का
जेइ ··· खावा–जिसने (मुसलमान आदि मांसभक्षकों ने)
जिस तरह दूसरों का मांस खाया था, उसका उसी प्रकार औरों (भूत पिशाचादि एवं मांसखोर पक्षियों) ने खाया

तन·गा–शरीर गया
सकति–शक्ति भर, अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार

मुए–मर गए
पोखि–पोषण करके
ओछ–ओछा, छोटा
पूर–पूरा
जोखि–समझता
काहू ··· जोखि–शरीर किसी के संग नहीं गया; सब इसका यथाशक्ति पोषण करके ही

मर गए। ओछा (छोटा मनुष्य) उसी को समझना चाहिए, जो (इस तन को) स्थिर—सदा रहने वाला—नित्य समझता है; और पूरा मनुष्य इस शरीर को अस्थिर (अनित्य) समझता है

कुमुद-कोई का फूल

गगनमहँ-आकाश में

सेत-श्वेत, सफ़ेद

पियर-पीले

राते-लाल

बहुरंगा-अनेक रंग के, रंगबिरंगे

केलि-क्रीड़ा

सोन-जल में रहने वाला एक पक्षी

ढेंक-पानी के समीप रहने वाला एक पक्षी

लेदी-जल के समीप रहने वाला एक पक्षी

मरजीया-गोता लगाने वाला

सूरदास

अनत-अन्यत्र (भगवान-कृष्ण को छोड़कर) और स्थान पर

कमलनयन-कमल के समान आँखों वाला, विष्णु, कृष्ण

दुर्मति-मूर्ख

मधुकर-भौंरा

अंबुज-कमल

प्रभु कामधेनु-प्रभु रूपी कामधेनु

छेरी-बकरी

नवनीत-मक्खन

रेनु-धूल

तन मंडित-शरीर पर शोभायमान

चारु-सुंदर

लोल-चंचल

लोचनछवि-आँखों की कांति

मधुपगन-भौंरे

रुचिर-सुंदर मनोहर

किती वार-कितना समय, कितने दिन

अजहुँ–अभी तक

बल–बलराम

काढत–माँग बनाते हुए

ओंछत–कंघी करते हुए

नागिन सी–साँपिन की तरह

भ्वैं–भूमि पर, जमीन पर

पचि पचि–जैसे-तैसे, बड़ी कठिनता से

हलधर–बलराम

जोटी–जोड़ी

बलैया–बला, बलाय

धिरयो–डराया, धमकाया

हरख–हर्ष

वंसीवट–एक वृक्ष जिसके नीचे खड़े होकर श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। वृंदावन में अब भी यमुना के किनारे वंशीवट प्रसिद्ध है

बँहियन–बाहें

किहि विध–किस प्रकार

बरबस–जबरदस्ती

कहे पतियायो–कहने पर भरोसा कर लिया

जिय–मन में

घिरावत–घिरावते हैं, इधर उधर से हँकवाकर एक स्थान पर करवाते हैं

न पत्याहि–विश्वास नहीं करती हो

मारत रिंगाइ–चला चलाकर मार डालते हैं—बहुत अधिक थका डालते हैं। 'मैया... गाइ' इत्यादि पद में 'जो न पत्याहि···दिवाइ' इस पंक्ति से आगे 'यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि गारी देति रिसाइ' यह पंक्ति और जोड़ लेना

रिसाइ–क्रुद्ध होकर, नाराज़ होकर

जैहौं–जाऊँगा

खैहौं–खाऊँगा

रेंगत घामहिं माँझ—गरमी में घूमते घूमते

चाहत–देखते
बदन–मुख
दुरावत–छिपाते हो
निपट–बिलकुल
दधि भाजन–दही का बरतन
गौरस–छाछ
नायो–झुकाया, डाला
मुरि–मुड़कर
नागर–चतुर

मीराबाई

मनुआँ–मन
नँदलाल–श्रीकृष्ण
अधर–निचला ओंठ
राजित–शोभायमान, शोभित
नूपुरसब्द–बिछुवे का शब्द
रसाल–मधुर, मीठा
भक्तबछल–भक्तवत्सल, भक्तों के प्रेमी
गोपाल–श्रीकृष्ण
अविनासी–न नष्ट होने वाला, सदा रहने वाला, नित्य, ईश्वर
जेतइ–जितना ही
दीसे–दीख पड़ता है
धरनि–पृथिवी
गगन–आकाश
तेतइ–उतना ही
उठ जासी–नष्ट हो जायगा
करवट–करपत्र, करवत, आरा, जिससे शुभ फल की आशा से प्राण दिए जाते थे
इहि–इस
देही–शरीर
चहर–चहल, आनंद की धूम, रौनक़
आसी–आएगा।
अबला–बलहीन स्त्री
चंग–डफ के आकार का एक छोटा बाजा
डफ–छोटी डफली
जुवती–युवती, जवान (स्त्री)
स्यामा–श्यामा, राधिका जी

तुलसीदास

मज्जनफल–स्नान का फल
पिक–कोयल
मराल–हंस
जनि–मत, नहीं
गोई–गुप्त, छिपाई हुई
घटयोनी–अगस्त्य ऋषि, जिसकी उत्पत्ति घट से मानी जाती है
होनी–होनहार, वृत्तांत, ध्रुव बात
भूति–ऐश्वर्य, धन, संपत्ति
सोई–वह
मुद–आनंद
सिधि–सिद्धि
परसि–स्पर्श करके, छूकर
फणिमणिसम–साँप की मणि के समान
बिधि–ब्रह्मा
हरि–विष्णु
हर–महादेव
कोविद–विद्वान्
मो सन–मुझ से
शाक वणिक–शाक बेचने वाला
मणिगुणगण–मणि के अनेक गुण। जिस प्रकार सब्जी बेचने वाला मणि के अनेक गुणों को नहीं बता सकता, ऐसे ही मेरे जैसा अज्ञ मनुष्य साधु की महिमा का वर्णन कैसे कर सकता है
समान चित–जिनका हृदय सब के लिए एक समान है
हित–मित्र
अनहित–शत्रु
अंजलिगत–अंजली में रखे हुए
सुमन–फूल
सम…दोय–दोनों हाथों को बराबर सुगंधित कर देते हैं
लघु–तुच्छ, छोटा
कुंभज–घटयोनि, अगस्त्य ऋषि
सिन्धु–समुद्र
रविमंडल–सूर्य का घेरा

त्रिभुवनतम–तीनों लोकों का अंधकार
खर्व–छोटा
प्रपंच–सृष्टि
शंभु–महादेव
शेष–शेषनाग
धरहिं–धारण करता है
महिभारा–पृथिवी का बोझ
दृष्टि–दर्शन, ज्ञान
भवानी–हे पार्वती !
अस जिय जानी–ऐसा हृदय में समझ कर
दुखारी–दुखी
रजकै–धूल के समान
कत–कुतः, क्यों, किस लिए
मिताई–मित्रता
दुरावा–छिपाया
बल अनुमान–शक्ति के अनुसार
शतगुण–सैकड़ों गुना, बहुत अधिक
श्रुति–वेद

अहि गति सम–साँप की गति (चलने) के समान कुटिल
वारिद–मेघ, बादल
पेखि–देखकर
दामिनि–बिजली
घन–बादल
जलद–मेघ, बादल
नियराये–निकट आ गए
उतराई–उबाल आ गया
डाबर–मैला
सरिताजल–नदी का पानी
जलनिधिमहँ–समुद्र में
अचल–निश्चल, स्थिर
हरित–हरी-भरी
तृणसंकुलित–तिनकों से ढकी हुई
दादुरध्वनि–मेंढकों का शब्द
बटु समुदाई–ब्रह्मचारी गण
नवपल्लव–नए पत्तों वाले
विटप–वृक्ष
अर्क–आक का पेड़

जवास–एक कटीला पौधा
खल उद्यम–खल का उद्योग–यत्न
निरावहिं–निराते हैं, तिनकों से रहित करते हैं
मोह–अज्ञान
मद–अहंकार
मान–अभिमान
चक्रवाक खग–चकवा-चकई नाम के पक्षी
कलिहिं पाई–कलियुग को पा करके
पराहीं–भाग जाता है
हरिजन उर–ईश्वर-भक्त मनुष्यों के मन में
संकुल–व्याप्त
भ्राजा–शोभायमान हुई
सुराजा–अच्छा राज्य
मारुत–हवा
बिलाहिं–विलीन हो जाते हैं, अदृश्य हो जाते हैं
निबिड़–घना
पतंग–सूर्य
विगत–बीत गई
वर्षाकृत–वर्षा से किया हुआ
बुढ़ाई–बुढ़ापा
उदित–उदय हो गया, निकल आया
अगस्त–एक तारे का नाम
खंजन–काले और सफेद रंग का एक सुंदर पक्षी, जिसकी उपमा आँखों से दी जाती है, मीमला
सुकृत–पुण्य
धरणी–पृथिवी
मीना–मीन, मछली
शारदी–शरद् ऋतु संबंधी, शरद् ऋतु में होने वाली
नीर–पानी
खगरव–पक्षियों का शब्द
नाना-रूपा–अनेक प्रकार का
शरदातप–शरद् ऋतु की धूप, शरद् ऋतु का संताप

शशि–चंद्रमा, चाँद
अपहरई–अपहरण कर लेता है, दूर कर देता है
इंदु–चाँद
मशक–मच्छर
दंश–डाँस, वन की मक्खी
बीते–बीत गए, नष्ट हो गए
हिमत्रासा–ठंढ के डर से
द्विजद्रोह–ब्राह्मण के साथ द्रोह करना
भृगुकुल कमल पतंगा–भृगुकुल-रूपी कमल के लिए सूर्य के समान
महीप–राजा
लवा–एक पक्षी
भूति–भस्म
रिसि बस–क्रोध के वश होकर क्रोध के कारण
अरुण–लाल
भ्रकुटी–भौंहें
कुटिल–तिरछी, टेढ़ी
रिसि राते–क्रोध से भरे हुए
रिसाते–क्रुद्ध हुए
वृषभकंध–बैल या साँड की तरह स्थूल कंधो वाला
मुनिबसन–मुनियों का वस्त्र, पेड़ की छाल, वल्कल
तूण–तरकश
कल–सुंदर
करनी–कार्य, कर्म
धरि–धारण करके
भृगुपति–परशुराम
कराला–भयंकर, डरावना
भय बिकल–भय से बेचैन
भुआला–राजा लोग
जेहि···खुटानी–जिसकी ओर वे, सहज स्वभाव से–साधारणतया—भी हित जान कर देख लेते हैं, वही समझ लेता है कि मानों मेरी आयु समाप्त हो गई, अर्थात् मेरा काल आ गया

पदसरोज–चरणकमल
ढोटा–पुत्र
जोटा–जोड़ा
मारमदमोचन–कामदेव के घमंड को नष्ट करने वाला
अनत–अन्यत्र
चापखंड–धनुष के टुकड़े
केहि–किसने
वेगि–झट पट, जल्दी
अर्धनिमेष–आधा पलक
रिसाय–क्रोधपूर्वक
कोही–क्रोधी
अरिकरनी–दुश्मन का काम
बिलगाइ–अलग हो जाय
नतु–नहीं तो
धनुहीं–छोटे छोटे धनुष
लरिकाईं–लड़कपन में
भृगुकुलकेतू–परशुराम
धनुही⋯संसार–सारे संसार में प्रसिद्ध शिव जी का धनुष छोटे (तुच्छ) धनुष के तुल्य है ?

त्रिपुरारि–शिवजी
महिदेवन–ब्राह्मणों को
गर्भन के–गर्भ को
अर्भक दलन–बच्चों को मारने वाला
घोर–भयंकर
इहाँ⋯जाहीं–यहां कोई कुम्हड़े की बतिया—काशीफल का हाल ही का निकला हुआ फल तो है नहीं, जो तर्जनी अंगुली देखते ही डर जाय—कुम्हला जाय
महिसुर–ब्राह्मण
गाई–गाय
पा–पैरों में
कोटि कुलिससम–करोड़ों वज्रों के समान कठोर
भानुवंशराकेशकलंकू–सूर्यकुल-रूपी चाँद का कलंक, धब्बा
खोटि–दोष
हटकहु–मना कर दो

तुम तौ...बुलावा–तुम तो मानो काल को (साथ ही) हाँक लाए हो—ले आए हो—जो बार बार मेरे लिए बुला रहे हो!

गाधि सुअन–गाधि का लड़का, गाधि पुत्र, विश्वामित्र

मुनिहिं...सूझ–मुनि को भगवान् शत्रु ही दीख पड़ते हैं!

अजगव–शिव जी का धनुष

अब...बोली–अब किसी साहूकार को बुला लाइए—अर्थात् अपने गुरु महादेव को बुला लाओ, वे ही बदला ले जायँगे

सेनहिं–इशारे से

द्विजदेवता...बाढ़े–ब्राह्मणदेवता घर ही के बड़े होते हैं अर्थात् घर में ही माता का सिर काटकर अपनी बहादुरी दिखाया करते हैं!

कृसानु–आग

अयाना–अनजान

जुड़ाने–ठंढे हुए

कालकूटमुख...नाहीं–(तुमने जो कहा था कि 'शुद्ध दूध मुख करिय न कोहू' सो यह बात नहीं है। यह) दूध पीते बालक के तुल्य नहीं है; यह तो कालकूट—विष-से युक्त मुँह वाले सर्प के समान है अथवा—यह दुधमुँहा नहीं, इसके मुँह में तो कालकूट विष है

मीचुसम–मृत्यु के समान

बैठिय...पिराने–बैठ जाइए; खड़े खड़े पैर दुखने लगे होंगे

मष्ट करहु–बस चुप रहो

कनकघट–सुवर्णनिर्मित घट, सोने का घड़ा

नयन तरेरे–आँख से डाटा

अनैसे–टेढ़ी निगाह से

अवनिप रमनि–राजाओं की रमणियाँ—रानियाँ
घहै न हाथ–हाथ नहीं उठता
नृप ढोटा–राजा का लड़का
करसि···प्रबोध–हमें ज्ञान सिखाता है !
गुनहु...दोपू–कसूर तो लक्ष्मण का और क्रोध हम पर ! क्या कहीं सीधेपन से भी बड़ा कोई दोप है
प्रभु···कस–स्वामि और सेवक का युद्ध कैसा ?
चीन्हा–पहचाना
वंशसुभाव–रघुवंशियों के स्वभाव के अनुसार
सरवरि–बराबरी
नव गुण–नौ गुण—शम, दम, तप, शौच, संतोप, ऋजुता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता
चाप···जानू–धनुष को स्रुवा और बाणों को आहुति समझो
चतुरंग–चतुरंगिणी—रथ, हाथी घोड़े और प्यादे
विप्र के भोरे–ब्राह्मण के धोखे से
दाप–अभिमान
अहमिति–जो कुछ हूँ सो मैं ही हूँ
जो रण···होऊ–जो हमें रण के लिए ललकारता है, तो फिर चाहे वह काल ही क्यों न हो हम उससे भी सुखपूर्वक युद्ध करते हैं—दो दो हाथ करते हैं
समर सकाना–युद्ध में डरता है
विप्रवंश···डराई–ब्राह्मण वंश की प्रभुता ऐसी है कि जो तुमसे डरता है वह (और सब जगह से) निर्भय हो जाता है
गहन···कृशानू–घने राक्षसों के कुल को भस्म करने के लिए अग्नि-स्वरूप

वचन....नागरवचनों की रचना में अत्यंत निपुण
सुभग-सुंदर
अनंगा-कामदेव
महेश...हंसा-महादेव के मन रूपी मानसरोवर के हंस!
गवहिं पराने-भाग भागकर वहां से सटकने लगे
देवन......दुंदुभी-देवता लोग डमाडम नगाड़े बजाने लगे
सुअंत तरु-सुंदर आम के वृक्ष के समान
पाहन-पाषाण, पत्थर
बाजि-घोड़ा
राम....दीप-रामनाम-रूपी मणि का दीपक
जीह...द्वार-जीभ-रूपी देहली के द्वार पर

रहीम

दुरो-छिपाया
अंबुज-कमल
अंबुबिनु-बिना पानी के, जल-रहित
ताकर-उसका
भुजंग-साँप
बापुरो-अकिंचन, दीन, बेचारा
तितही-उतना ही
टूटे-विमुख हुए, अप्रसन्न हुए
गोय-छिपाकर
अठिलैहैं-ठट्ठा उड़ाएँगे
जुहार-बंदगी
मुरलीधर-वंशी धारण करने वाला
सलिल-पानी
अघाय-तृप्त होकर
उदधि-समुद्र
उरग-साँप
तुरग-घोड़ा
श्याम कचन में-काले बालों में
ललन-प्यार करना
परतिया-दूसरे की स्त्री
करिसम-हाथी के समान

विपति कसौटी–विपत्ति-रूपी कसौटी

केशवदास

सुधी–विद्वान्

पापपट्टन–पाप-रूपी नगर

मोह-तरु–अज्ञान-रूपी वृक्ष

अघ ओघ–पापों का समूह

दरिद्र–दरिद्रता, कंगाली

आन जन्म–अन्य जन्म, दूसरा जन्म, पुनर्जन्म

नेगी–नेग का भागी, नेग पाने वाला। नेग—ब्याह आदि में कर्मचारी आदिकों को दिया गया धन, दस्तूरी

नरहरि

बँधुआ–बंदी, कैदी

सरवर–तालाब

केहरि–केसरी, सिंह

विपुल गज्जूह–बड़े बड़े हाथियों के झुंड

नीर सरवर–तालाब का पानी

सुफर–सुंदर फल

मलैगिर–मलय पर्वत, दक्षिण का एक पर्वत जहाँ चंदन होता है

बिहारी

भव-बाधा–संसार का दुःख, जन्म मरण का दुःख

नागरि–चतुर

झाईं–परछाईं; (२) झलक; (३) ध्यान

स्यामु–नीला रंग; (२) श्रीकृष्ण; (३) पातक आदि

हरितदुति–हरी कांति वाला, हरे रंग का; (२) हरा-भरा, प्रसन्न; (३) कांति हीन

सिरजोई नाहिं–बताया ही नहीं

मधु–पुष्प-रस

अली–भौंरा

हवाल–हालत, परिणाम, दशा

जनायौ–जनाया, ज्ञात कराया;

अथवा उत्पन्न किया

गुडी–पतंग

आनन ओप उजास–मुँह की कांति के उजाले से

जदुपति–श्रीकृष्ण

कहलाने–गरमी से व्याकुल, शिथिल

एकत–एकत्र, एक स्थान पर

अहि–साँप

दीरघ दाघ–अत्यंत ताप वाली

निदाघ–ग्रीष्म ऋतु

मोर···चंद–मोर मुकुट की चंद्रिकाओं से श्रीकृष्ण इस प्रकार शोभायमान हैं, मानों उन्होंने चंद्रशेखर (चंद्र जिन के सिर पर विराजमान है ऐसे) शिव जी की ईर्ष्या से अपने सिर पर सैकड़ों चंद्र धारण कर लिए हों !

ससि सेखर–शिव जी

अकस–डाह, ईर्ष्या, द्वेष

स्यामरँग–काला रंग; (२) कृष्ण-भक्ति

जोइ–जोही, देखी

सुचित अंतर–शांत चित्त वाले मनुष्य के हृदय में

प्रतिबिंबित–प्रतिबिंब वाला, परछाईं वाला

बिरद–प्रशंसा

नलनीर–नल का पानी

भूषन-भारु–गहनों का बोझ

संपति-सलिलु–संपत्ति-रूपी जल

मन-सरोजु–मन-रूपी कमल

सु–वह

मोरचा–जंग, जो लोहे आदि पर लग जाता है; मैल

नलबल–नल के सहारे

विकट जुटे–बड़े जोर से—दृढ़ता से—बंद हुए

जौ लगु–जब तक

पतवारी···नाउ–माला-रूपी पतवार पकड़कर, हरि-नाम

को नौका बनाकर संसार-रूपी सागर को पार कर

बिडारि दई–डरा कर भगा दिया

कनक–सोना, धतूरा

अपत–पत्रहीन, पत्तों से रहित

भ्रुवसंग–भौंह के संग से

बंकगति–तिरछी चाल वाले, टेढ़ी चितवन वाले

औथरौ–छिछला, छूँछा, रीता, खाली

वाइ–वापी, बावड़ी

भव-पारावार–संसार-रूपी समुद्र

तिय-छवि–स्त्री की कांति

छाया-ग्राहिनी–समुद्र पार करते समय हनुमान जी की छाया को ग्रहण करके उन्हें खींचने वाली एक राक्षसी; सिंहिका नामक राक्षसी। परछाईं देख कर पकड़ने वाली

सुआ–तोता

बिकारी–एक टेढ़ी पाई, जिसे रुपये आदि के लिखने में संख्या के मान या मूल्यादि के सूचनार्थ आगे लगा देते हैं; जैसे—); ऽ। दाम लिखने की पुरानी प्रणाली अब तक प्रचलित है, पहाड़ा है—"छदाम के ६ दाम, धेला साढ़े बारह १२।। दाम, पैसे के पचीस २५ दाम" इत्यादि। इसके अनुसार ६ दाम, पर वंक बिकारी ६) देते ही छदाम के छः रुपये हो गए। कितना अंतर हो गया ! इसी लिए 'इतौ' कहा है।

गैन–गगन, आकाश

मुँहजोर–उद्दंड

आतपु···प्रभात–प्रातःकाल की धूप पड़ी हो

काछनी–कसकर और जांघ पर चढ़ाकर पहनी हुई धोती जिसकी दोनों लाँगें पीछे

खोंसी जाती हैं, एक प्रकार का कटिवस्त्र
वानिक–वेश
तुव–तव, तुम्हारे
ताते–तत्ते, गरम; क्रोधयुक्त
मौ रस–मेरा प्रेमानंद
खिन खिन–क्षण क्षण में
खीर–क्षीर, दूध
सवादिलु–स्वाद
राँचै–अनुरक्त होता है; प्रेम करता है
तरु अरक–आक का पेड़
अरक-समानु-सूर्य के समान
उदोतु–प्रकाश

भूषण

नाग–साँप
नागजूह–हाथियों का समूह
पुरहूत–इंद्र
रवि किरन समाज–सूर्य-किरणों का समूह
रसना–जीभ
सुघर–सुंदर
मींडि राखे–मसल डाले
वरदान राख्यौ कर में–वरदान हाथ में रक्खा, जिससे जो वादा किया उसे पूरा किया
देवल–देवालय, मंदिर
सगबग–झटपट, जल्दी से
अनखातीं–नाराज़ होतीं
बिललाती–चिल्लाती
घाती–आत्मघात
किबला–पश्चिम दिशा, पश्चिम दिशा में स्थित मुसलमानों का तीर्थस्थान—मक्का; पूज्य अथवा पिता
मेहर–दया
नवरंगजेब–औरंगज़ेब
मंदर–महल; (२) (मंदराचल) पर्वत
कंदमूल–मीठे पदार्थ; (२) वन में होने वाले कंदमूल—ऋषियों के भोज्य पदार्थ

तीन बेर-तीन बार; (२) तीन बेर के फल
भूषन-आभूषण, जेवर; (२) भूख से
बिजन-व्यजन, पंखा; (२) निर्जन स्थान, जंगल
नगन-हीरे पन्ने आदि; (२) नग्न—नंगी
जड़ाती-जाड़े से थर थर काँपती
हयादारी-लज्जाशीलता, शरम
नासपाती-एक फल, नाशपाती
बनासपती-शाक पात

रसखान

अगम-गहरा
अमित-अपार
ढिग-निकट
बहुरि-फिर
छीन-(क्षीण) सूक्ष्म, बारीक
अनिवार-अटल
जु-पै-जो (जिसने) पर
याहि-इसे—अर्थात् प्रेम को

मानुस-मनुष्य
हौं-होऊँ
ग्वारन-ग्वाले
कहा बस मेरो-मेरा क्या बस है—अर्थात् मैं विवश हूँ
धेनु-मँझारन-गायों के बीच
पाहन-पत्थर
गिरि-(गोवर्द्धन) पर्वत
जो-जिसे—अर्थात् जिस गोवर्द्धन पर्वत को
पुरंदर कारन-इंद्र के कारण। व्रज में वर्षा ऋतु के प्रारंभ में इंद्र-पूजा होती थी। भगवान् कृष्ण ने इस पूजा को बंद करवा दिया, और उसके स्थान पर गोवर्द्धन पर्वत की पूजा के लिए कह दिया। बस फिर क्या था, सब गोप-गोपियाँ गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करने लगे। इंद्र ने इस से क्रुद्ध होकर व्रज में मूस-

लाधार वृष्टि गिरानी आरंभ कर दी। तब कृष्ण भगवान् ने गोवर्द्धन पर्वत को अपने हाथ में छतरी की तरह तान-कर उस भयंकर वृष्टि से व्रज की रक्षा की

कालिंदी कूल कदंब–यमुना के किनारे खड़ा कदम का वृक्ष

वृंद

नीकी–अच्छी

रस अनरस–प्रेम अप्रेम

गैर–अन्य, दूसरा; अत्याचार; यहाँ शत्रुता अथवा अनबन अर्थ ठीक बैठता है

पिसुन-छल्यो–चुगलखोर आदमी से छला गया

दाध्यो–दग्ध किया गया, जलाया गया

पौन–पवन, हवा

छीलर–छिछला गड्ढा, ओछा

परचै–परिचय, जान-पहचान

अरुचि–घृणा, नफ़रत

भाय–भाव, विचार

मलयागिरि–दक्षिण देश में वर्तमान एक पर्वत, जहाँ चंदन बहुतायत से होता है, मलयपर्वत

अचेतन–जड़

निदान–अंत में, आखिरकार

भान–भानु,सूरज

सुरा–शराब

अहीरी-पानि–ग्वालिन के हाथ में

विभौ–विभव, ऐश्वर्य, प्रकाश

रोपै–बोता है

बिरवा–पौधा, वृक्ष

करी-निबंधन–हाथी को बाँधने वाली

जड़मति–मूर्ख

सुमिल–खूब मिली हुई; (२) घनिष्ठ, गाढ़ी

अनमिल–अलग अलग; (२) भेद युक्त

आँक–निश्चय से; अथवा परख

सरस्वति–विद्या

अविधि–अन्याय

विलसै–फूले-फले, मजे उड़ावे

पिक–कोयल

अबोध–अज्ञानी, मूर्ख

छेरी–बकरी

बैताल

एकग्र–एकाग्र, स्थिर

बाँट सहारे–बाट के सहारे, तराजू पर

सुखपाल–एक प्रकार की पालकी

गरियार–गलिया, चलते-चलते खड़ा हो जाने वाला अथवा बैठ जाने वाला

करकसा–कर्कशा, कठोर स्वभाव की

निखट्टू–कुछ न कमाने वाला; आलसी, सुस्त

बाँभन–ब्राह्मण

बे-नियाव–अन्यायी

गाढ़े सँकरे–अत्यन्त संकट के समय में

गिरिधर

दुहुन–दोनों

महिमंडल–सारी पृथिवी

जुगन–युगों से

निपंग–अपंग, अपाहिज, लँगड़ा-लूला

परिहरिय–दूर रहना चाहिए, बचना चाहिए

ठाँउ–स्थान पर

अपावन–अपवित्र, बुरा

सहस–सहस्र, हज़ारों

मरघट–श्मशान

हो धूर के बाटी–हे धूल वाले मार्ग के पथिक !

परतीती–प्रतीति, ज्ञान

सियरे–शीतल, ठंडे, शांत

त्रास–दुःख

बाज्यो–कहलाया

पानी–यश, इज्जत

कोटि–करोड़ों उपाय
सरबस–सर्वस्व, सब कुछ
ह्वाय–ठठाकर, ज़ोर से
आतुर–दुखी, अधीर
अनखैहैं–नाराज़ हो जाएँगे

पद्माकर

कलित–सुंदर
कीरति–यश। यश का रंग श्वेत माना गया है
कुमोदिनी–कमलिनी
कंद–मिश्री
हिम–बरफ
वृंद–समूह
छीर–दूध
छीरधि–क्षीर समुद्र
छंद–समूह; रंग-ढंग
चंदचूड़–चंद्रशेखर, शिव जी
डौर–ढंग
भौरन–गुच्छे
बौरन–आम के पुष्प, आम्र-मंजरी
गलियान–गलियों में
छलिया–हँसी में चाल चलने वाले
छवीले-छैल–सुंदर युवक
छवि-छ्वै-गये–सुंदर हो गए
विहंग-समाज–पक्षियों का समूह
रस–आनंद
रीति–ढंग

दीनदयाल गिरि

परिमल–सुगंधि
भंजन–तोड़ना
प्रभंजन–प्रचंड वायु, तेज हवा
बरजोरी–बरज़ोर, अत्याचारी
दवागि–दावाग्नि, वन की आग
मरु–रेत
बहुरि–फिर
ऐहैं–आएँगे
तरी–नाव
आरत–दुखी
तरनी–तरणि, नौका
गैल–मार्ग

जैहैं–चले जाएँगे
मालाकार–माली
नंदकुमार–श्रीकृष्ण भगवान्
वन विषै–वन के बीच में
कनक पींजरे–सोने के पींजरे में
दीन–दुखी
दारन–नष्ट
भीम–भयंकर
भुजंग–साँप
शशि-मयूख–चंद्र की किरण
काक-तालिका न्याय–अचानक कोई काम हो जाना
पंगु–लँगड़ा
हर–महादेव, शिव
मोद–प्रसन्नता
परमागेह–सौंदर्य का घर

हरिश्चंद्र

शारदी सुषमा–शरद ऋतु की परम शोभा
निसानाथ–चंद्रमा
वसन–वस्त्र
उडुगन–तारे, नक्षत्र
किधौं–या, अथवा
नव-बाल–नवयुवती
रंजित–रँगी हुई
घन-पटली–बादलों की पंक्ति, मेघमाला
हास विभव–उत्कृष्ट हास्य
सुरत–स्मरण
अजामिल–यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण था; किंतु कुसंग में पड़कर दुराचारी बन गया था। इसने अपने माता-पिता और स्त्री सब को छोड़ दिया था। इसके दासी के गर्भ से अनेक पुत्र हुए थे। सब से छोटे का नाम नारायण था। मृत्यु के समय इसने उसी को 'नारायण!' कह कर पुकारा। इस प्रकार नारायण शब्द के उच्चारण करने से

ही उसकी मुक्ति हो गई

गज–गज-ग्राह की पौराणिक कथा प्रसिद्ध है । ग्राह ने जब गज को पकड़ लिया, तो गज ने छूटने का बहुत प्रयत्न किया; किंतु जब वह किसी प्रकार अपने को नहीं छुड़ा सका, तब वह कमल सूँड में लेकर भगवान् का स्मरण करने लगा भगवान् ने कृपा कर उसकी ग्राह से रक्षा की

अबार–देर, विलंब

बान–आदत

चौतनी–बच्चों की वह टोपी, जिसमें चार बंद लगे रहते हैं

चकई–एक गोल खिलौना

घुटुरुवन–घुटनों के बल

हार हीरक सी–हीरों के हार के सदृश

छहरति–फैलती हैं, शोभित होती हैं

मुक्तामनि–मोती

पोहति–पिरोती हैं, गूँथती हैं

लोल–चंचल

सुभग–सुंदर

स्वर्ग सोपान सरिस–स्वर्ग की सीढ़ी के सदृश

मज्जन–स्नान

त्रिविध–तीनों प्रकार के—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक

श्रीहरि···रस–विष्णु भगवान् के चरण नख-रूपी (पैरों के नाखून रूपी) चंद्रकांत मणि से बहने वाला अमृतरस

भवखंडन–संसार से छुटकारा देने वाला, मुक्ति देने वाला

शिव···माल–शिव जी के सिर की चमेली के फूलों की बनी माला

ऐरावत····कंठहार–ऐरावत (इंद्र का) हाथी, पर्वतराज हिमा-

लय के गले का हार

कल-सुंदर

सगर-सुवन-सगर के पुत्र

नाथूराम शंकर शर्मा

शंवुक-सीप

छिगुनी-सब से छोटी अंगुली, कनिष्ठिका

सविता-सूरज

हय-घोड़ा

खर-गधे

मृगराज-सिंह

मराल-हंस

तमक-क्रोध करके

जीवन-पथ-जीवनमार्ग

तन-रथ-शरीर-रूपी रथ

बाग-लगाम

क्रोध-पाहन-क्रोध-रूपी पत्थर

प्रातिभ-प्रतिभा-संबंधी

श्रुति-वेद

सार-तत्त्व

श्रीधर पाठक

मनुज-वंश-मनुष्य कुल

सत्कर्म-परायण-अच्छे कामों में तत्पर

प्रकृति-शुभ-अच्छे स्वभाव वाला

निधान-खज़ाना

विश्व-निकाई-संसार भर की अच्छाई

सुषमा-परम कांति

विमल...महँ-स्वच्छ जल के सरोवरों-रूपी दर्पणों में

मुख-बिंब-मुँह की परछाईं

सरसति-आनंद देती है

चित्तरसारी-चित्रसारी उस स्थान को कहते हैं, जो चित्रों से भली भाँति सज्जित हो; यहाँ सुंदर 'काश्मीर' देश से अभिप्राय है

सुमंजु-अत्यंत मधुर

पुरंदर-इंद्र

प्रकोपन-भड़काने वाली

बानक–वेश, ढंग

अयोध्यासिंह उपाध्याय

व्योम–आकाश

जल-राशि–समुद्र

कोकिल-काकली–कोयल का मधुर शब्द

उकठे–सूखे

जलधि–समुद्र

वर–श्रेष्ठ

वसन–वस्त्र

रामचरित उपाध्याय

अनल–आग

पय–दूध

अम्ल–खटाई

उशीर–खस खस

हिमोपल–बरफ का पत्थर, ओला

हिम-रजनी–जाड़े की रात

चतुरानन–ब्रह्मा

क्रोधानल–क्रोध-रूपी आग

रामचंद्र शुक्ल

प्रतिरूप–प्रतिनिधि, तुल्य

सरोज–कमल

कलंक-करंबित–कलंक से युक्त

करंबित–मिश्रित, मिला हुआ

कूल–किनारा

अंजनवर्ण–श्याम रंग के

बक–बगुला

सित–सफेद

विलोक–देखकर

बिक जाती–आत्म-समर्पण कर देती है, निछावर हो जाती है

द्रुम-अंकित–वृक्षों से युक्त

हीरक-हेम-मरक्त-प्रभा–हीरा, सुवर्ण और मरकत मणि की कांति

कलाधर–चाँद

कलाप–समूह

घन-चित्रित–बादलों से युक्त

अंबर–आकाश

अंक–गोद

सुषमा-सरसी–महान् शोभा का सरोवर

सरसाती–शोभा देती है
निधि-खज़ाना
कगरों–ऊँचे किनारों
धवली–सफेद
अवली-श्रेणी, पंक्ति
कछार–सागर या नदी के तट की
तर और नीची भूमि, खादर
जननी धरणी–पृथिवी-रूपी माता
नीड–घोंसले
तटी–नदी
तनु धार–छोटी धारा
दलराशि–पत्तों का समूह
आतप-धूप
कल–मनोज्ञ, सुंदर
कर्बुरता–रंग-बिरंगापन, कबरापन
कविवृंद–हे कविगण !

मैथिलीशरण गुप्त

उद्बोधन–जगाना
हतभाग्य–खोटे भाग्य वाली !
अभागी !
पूर्व-दर्शन–पहले वाला ज्ञान
वैभव–धन संपत्ति
अखिल-कर्त्ता–सारी सृष्टि को
बनाने वाला
ताप–दुःख
मानव–मनुष्य
रत्नाकर–समुद्र
पाणि-ग्रहण–हाथ पकड़ना
पीयूष-अमृत
समरस्थली–युद्धभूमि
मृतक-सम–मरे हुए के समान
उत्साह-जल–उत्साह-रूपी जल
गोड़ दो–गोड़ना—खोद कर
मिट्टी उलट देना, जिससे वह
पोली और भुरभुरी हो जाए
अमित्र–शत्रु
कर्म-तैल–कर्म-रूपी तेल
विधि दीप–भाग्य-रूपी दीपक
दैव–भाग्य
अविवेकता–अज्ञान
बल बोध–शक्ति और ज्ञान

भिन्नता—अलग अलग रहना, विरोध

खिन्नता—दुःख

वर्णैकता—वर्णों की एकता, अक्षरों का मेल

निबंध—रचना, प्रबंध, लेख, गीत

योग—संबंध

अलीक—झूठा

अपघात—हत्या, धोखा

आदृत हुए—आदर पाया

धृत हुए—पकड़े गए, परतंत्र हो गए

हृत हुए—हर लिए गए, नष्ट हो गए

उत्तप्त ऊष्मा—भयंकर गरमी

पद—स्थान

पुनरासीन—फिर स्थित

आधि—मानसिक कष्ट, चिंता

व्याधि—शारीरिक कष्ट, रोगादि

रत—लगा हुआ

जयशंकर प्रसाद

स्वर्ण···समान—स्वर्ण कमल के पराग के तुल्य

वेदना—दुःख

अरुण-शिशु—सूर्य-रूपी बालक

सविलास—आनंद क्रीड़ा पूर्वक

कांत—सुंदर

उषा—प्रातःकाल

अश्रांत—बिना थकावट के

कोकनद—लाल कमल

तरल—चंचल

सूत्र-सदृश—धागे के तुल्य

भूलोक—पृथिवी लोक

सुमन—फूल

माखनलाल चतुर्वेदी

विश्व-सिद्धांत—संसार का सिद्धांत

पूर्ण···चरण—पूर्ण ज्ञान-रूपी सर्वेश—ईश्वर—के चरणों

जीवन-पुष्प—जीवन रूपी फूल

परमार्थी—यथार्थ तत्त्व की खोज करने वाला, तत्त्वजिज्ञासु

गौरव-गिरीश–यश-रूपी पर्वत
पीतांबर–पीला वस्त्र
माधव–कृष्ण भगवान्
जगतीतल–सारा संसार

रामनरेश त्रिपाठी

त्रिभुवन–तीनों लोक
लोलुप–लोभी, लालची
लघुता–छोटापन
गौरवता–बड़प्पन
रजनी–रात्रि
नीरवता–शब्द-शून्यता, शांति
समीर–वायु
मर्म-भेदिनी–मर्मस्थल को चोट पहुँचाने वाली
स्वर्ग-सदन–आकाश-रूपी घर, आकाश-मंदिर

गोपालशरणसिंह

रुचिर–सुंदर, मनोहारी
प्रतिबिंब–परछाईं, अक्स
चारु–सुंदर
चंद्रमुखी–चाँद के तुल्य मुखड़े वाली (स्त्री)
चंद्रवदनी–चंद्रमुखी
मुख-चंद्र–मुँह-रूपी चाँद
हीन–तुच्छ
असमंजस–दुविधा

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

प्रपात–झरना
अचल–पर्वत
क्षुद्र–छोटा
घन...अंधकार–वन का घोर अँधेरा
अविचार–विचार-शून्यता
साम्य-व्यवहार–सब के साथ एक सा व्यवहार
गतिरोध–चलने में रुकावट
अबोध–मूर्ख
जड़–मूर्ख

सुमित्रानंदन पंत

प्रतिपल–हर एक पल

सुखकर–सुख देने वाला
लघु-जीवन–छोटी सी जिंदगी
शुचितर–शुद्धतर, अधिक पवित्र
अस्थिर–चंचल
लघुतर–अधिक छोटी
सुघर–सुंदर
मधु–वसंत ऋतु
प्रियतर–अधिक प्यारी
मुकुल–कली
मानस–मन
प्रमुदित–प्रसन्न, खिला हुआ
मोदित–मोदयुक्त, हर्षयुक्त
विरक्ति–वैराग्य
विजन–एकांत
विपिन–वन
दुखविधुरा–दुःखिनी, दुःख के कारण बेचैन
निर्जनता–एकांत
अकरुण–कठोर
दिनकरकुल–सूर्यकुल
पर-सेवा-रत–दूसरों की सेवा में मग्न
पथ-श्रांति–मार्ग की थकावट
प्रियतम–ईश्वर
द्रुत–शीघ्र

रामकुमार वर्मा

सजकर–तड़क-भड़क के साथ
रजनी-बाले–हे रात्रि-रूपी बालिका !
उत्सुक–इच्छुक, लोभी
निर्झर–झरना
हहर कर–कंपित होकर, थरथराती हुई
विचुंबित–स्पर्श की गई, छुई गई
निर्झर स्वर–झरने की आवाज़—कलकल शब्द

सुभद्राकुमारी चौहान

अतुलित–जिसकी कोई तुलना न हो, तुलना-रहित
वीर-युत–वीर-भाव से युक्त

छैल छबीली-बनी ठनी, अल्हड़, मनमौजी

अलबेली-छबीली, सुंदर

रँगरलियों-आमोद प्रमोदों, आनंद क्रीड़ाओं

प्राकृत-स्वाभाविक

आह्लाद-प्रसन्नता, खुशी

लालिमा-ललाई

विजय गर्व-जीत का घमंड

प्रफुल्लित-प्रसन्न

मंजुल-सुंदर

बलदेव शास्त्री

दीन कृषक-दुखी किसान

क्षाम-कंठ-(भूख-प्यास के मारे) जिनका कंठ सूख गया हो

तप-काल-ग्रीष्म ऋतु

अन्न-हेतु-अन्न प्राप्त करने के लिए

रवि-चंड-ताप-सूर्य की भयंकर गरमी

सतत-निरंतर, सदा

घन-वृष्टि-काल-घोर वर्षा के समय

हताश-जिनकी आशा मारी गई हो, निराश

गृहिणी-घर वाली, पत्नी

यमराज-गाल-मृत्यु के मुँह

त्रिदोष-ज्वर-निमोनिया

उपचार-इलाज

क्षीण-देह-पतले-दुबले शरीर वाले

मुकुलित-हृदय-मुरझाए हुए दिल वाले